धर्म प्रवर्तक-
चौबीस तीर्थंकर

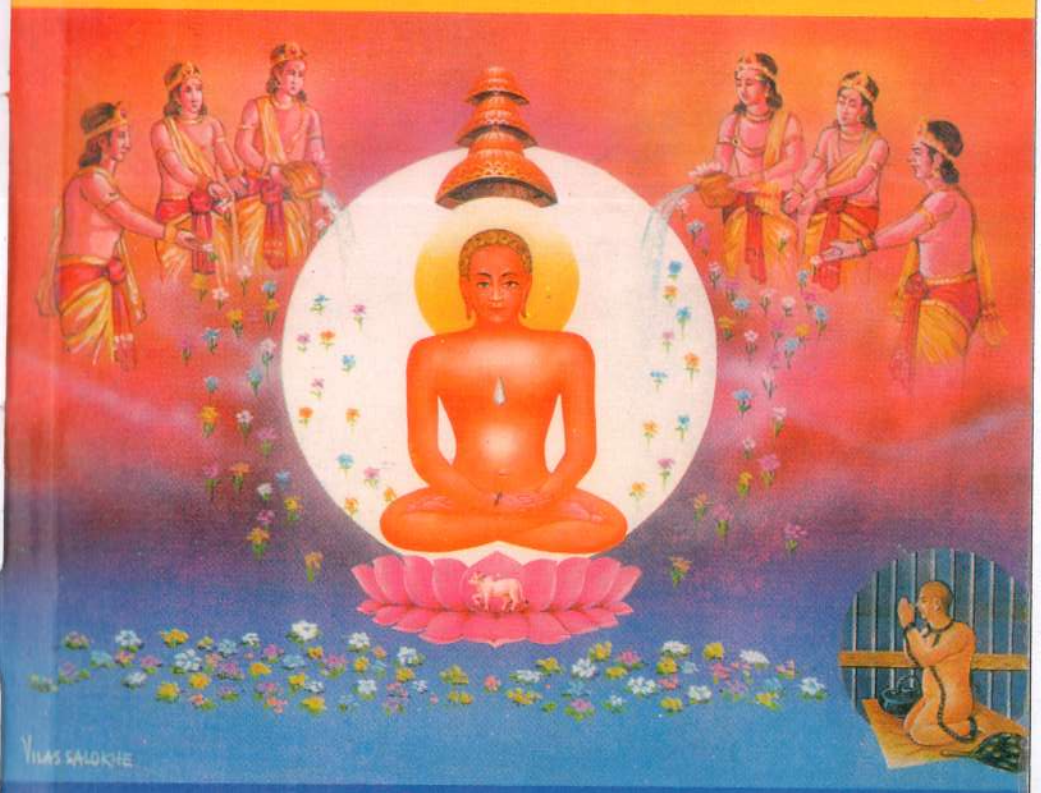

आ. रत्न श्री कनकनन्दीजी गुरूदेव

धर्म प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर

लेखक
आचार्य कनकनन्दीजी

ग्रन्थ प्रकाशन संदर्भ

श्रीमती मंजूलादेवी धर्मपत्नी अमृतलालजी गडिया के दशलक्षण के दस उपवास के उपलक्ष में श्री अमृतलालजी गडिया के सुपुत्र श्री चन्द्रकान्तजी, श्री विनोदकुमारजी, श्री महेशकुमारजी गडिया (सलूम्बर एवं उदयपुर) के सौजन्य से ।

प्रकाशक
धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान-ग्रथांक -41

पुस्तक :- धर्म-प्रवर्तक-चौबीस तीर्थंकर
लेखक :- आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव
आशीर्वाद :- गणधराचार्य कुन्थुसागरजी गुरुदेव
सहयोगी :- मुनि श्री कुमार विद्यानंदजी, मुनि श्री आज्ञासागरजी, आर्यिका कलाश्री
परम शिरोमणि संरक्षक :- रमेशचन्द्र कोटडिया -प्रतापगढ़ निवासी मुंबई एवं अमेरिका प्रवासी
अध्यक्ष :- श्री गुणपाल जैन (मुजफ्फरनगर)
कार्याध्यक्ष :- श्री भंवरलाल पटवारी (बिजौलिया)
वरिष्ठोपाध्यक्ष :- श्री सुशीलचन्द्र जैन -बडौत (मेरठ)
उपाध्यक्ष :- (सम्पादक-प्रकाशन) 1. श्री प्रभातकुमार जैन (मु.न.) 2. श्री राजमल पाटोदी (कोटा) 3. श्री रघुवीर सिंह (मु. न.)
मानद निर्देशक :- डॉ. राजमल जैन (उदयपुर)
मंत्री :- श्री नेमीचंद्र काला (जयपुर)
संयुक्त मंत्री :- श्री पंकजकुमार जैन (बडौत)
संस्करण :- द्वितीय -1998
मूल्य :- ज्ञान प्रचारार्थ सहयोग राशि : 11.00/- मात्र
प्रतियाँ :- 1000

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान :-
(1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान निकट दि. जैन धर्मशाला, बड़ौत (मेरठ)
(2) नव अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स,मोदीखाना,जयपुर -3 (राज.)
(3) श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमल जैन (वैज्ञानिक)
4-5 आदर्श कॉलोनी, पुलां, उदयपुर, फोन-(0294) 440793
(4) श्री गुणपाल जैन, बेहड़ा भवन, 87/1 कुन्दनपुरा
मुजफ्फरनगर (उत्तर प्र.), फोन -(0131) 433259

लेसर टाईप सेंटर्स :-
श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
25, शिरोमणि बंगलोज, बडौदा एक्सप्रेस हाइवे के सामने,
सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026
फोन -5891771-5892744

आशीर्वाद

अनेकान्त सिद्धान्त को समझने के लिये पूर्वाचार्यों ने 4 अनुयोगों का कथन किया । 1. प्रथमानुयोग, 2. करणानुयोग, 3. चरणानुयोग. 4. द्रव्यानुयोग। सिद्धांत में प्रवेश पाने के लिये पहले प्रथमानुयोग पढ़ना, अध्ययन करना अति आवश्यक है । प्रथमानुयोग में महान् पुरूषों के चरित्र का वर्णन होता है । जिसके पढ़ने से पुण्य का बंध होता है जिससे बोधि, सम्यक्ज्ञान और समाधि की प्राप्ति होती है । इसी बात को समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है –

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधि समाधि निधानं, बोधति बोधः समीचीनः ॥

इस ''धर्म प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर'' पुस्तक में 24 तीर्थंकरों के जीवन का संक्षिप्त वर्णन है, जो इसे पढ़ेगा उसे 24 भगवान् के जीवन का सम्पूर्ण ज्ञान हो जायेगा। यह छोटी–सी पुस्तक बहुत ही सरल भाषा में लिखी गई है जो सबके पढ़ने योग्य है । पुस्तक के लेखक आचार्य कनकनन्दी को मेरा आशीर्वाद । पुस्तक के कार्यकर्त्ताओं को आशीर्वाद, द्रव्यदाता को आशीर्वाद, साथ ही पढ़ने वाले विशेषतः बच्चों को भी आशीर्वाद । (प्रथम संस्करण से)

–गणधराचार्य कुन्थुसागर

महापुरूषों की संगति, जीवनी, संस्मृति, प्रार्थना हमें महापुरूष बनने की प्रेरणा देती है जैसा कि जलते हुए दीपक के सम्पर्क से बुझे हुए दीपक जल जाते हैं ।

शुभाशीर्वाद

बच्चे धर्म, समाज, राष्ट्र के भविष्य होते हैं। मनुष्य तथा विशेषत: बच्चे गुणग्राही तथा अनुकरण प्रिय होनेके कारण वे दूसरों से कुछ अनुकरण करके सीखते हैं। उनके समक्ष जो आदर्श रखा जाता है, जो उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है उसे वे शीघ्र ही आत्मसात् कर लेते हैं। अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करने पर वे अच्छी शिक्षा और बुरे उदाहरण से बुरी शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। बच्चों के मन, मस्तिष्क एवं भाव कोमल होने के कारण उन्हें महापुरुषों की कथा, कहानी, जीवनी अधिक प्रभावित करती है। बच्चे, भूतकालीन महापुरुषों से प्रेरणा प्राप्त करके भविष्यत् की ओर बढ़ने की कोशिश करते हैं। वर्तमान काल में जैन लोग धर्मशाला, मन्दिर, मूर्ति, संस्थान आदि बनाने में लाखों, करोड़ों रूपये खर्च करते हैं, परन्तु बच्चों को आदर्श व नीतिवान् बनाने के लिए रचनात्मक कोई भी कार्य नहीं कर रहे हैं। धातु, पाषाण की मूर्ति को भगवान् बनाने के लिए जिस प्रकार अर्थ एवं समय लगाते हैं उसी प्रकार यदि चलते-फिरते भावी भगवान् (बच्चों) को संस्कारित करके पूजनीय बनाया जाये, तब मन्दिर, मूर्ति, संस्था बनाने से कुछ कम महत्व या पुण्य कार्य नहीं होगा।

प्रिय बच्चों ! इस पुस्तक का अध्ययन करके आप जो भी रोज देव दर्शन करें, आहार दान दें, गुरूओं की सेवा करें व स्वयं को आदर्शमय बनाते हुए उनके समान बनने का पूर्ण प्रयास करें। आप लोग जिस प्रकार लौकिक शिक्षा के लिए श्रम करते हैं उसी प्रकार धार्मिक, नैतिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये भी श्रम करें क्योंकि शिक्षा का यथार्थ फल जीवन को नैतिक, आदर्श एवं महान् बनाना है। लौकिक शिक्षा में कुछ आक्षरिक ज्ञान, भौतिक ज्ञान के साथ -साथ अर्थ उपार्जन हो सकता है किन्तु परमार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती। आध्यात्मिक उन्नति, मानसिक शांति के लिए धार्मिक शिक्षा, धार्मिक आचार-विचार की आवश्यकता ही नहीं परन्तु अनिवार्यता है।

इस पुस्तक के संकलन एवं लेखन कार्य में कुमार विद्यानन्दी महाराज जी, आर्यिका राजश्री माताजी, आर्यिका क्षमाश्री माताजी का विशेष योगदान रहा। ज्ञान-दाताओं को प्रेरित करने में हुकमीचन्द सिंघवी का भी योगदान रहा है। द्रव्यदाता, किताब के लिखने में सहायक तथा पढ़ने वालों को मेरा मंगलमय आशीर्वाद।

(प्रथम संस्करण से)

बच्चों के हिताकांक्षी
उपाध्याय कनकन्दी

विषय -सूची

अध्याय	पृ. संख्या
1. धर्म प्रवर्तक (तीर्थंकर)	1
2. वर्तमान काल के चौबीस तीर्थंकर	7
1. आदिब्रह्मा ऋषभदेव जी	7
2. अजितनाथ जी	22
3. सम्भवनाथ जी	23
4. अभिनन्दननाथजी	24
5. सुमतिनाथजी	25
6. पद्मप्रभु जी	26
7. सुपार्श्वनाथ जी	27
8. चन्द्रप्रभु जी	28
9. पुष्पदन्त जी	29
10. शीतलनाथ जी	30
11. श्रेयांसनाथ जी	31
12. वायुपूज्य जी	32
13. विमलनाथ जी	33
14. अनन्तनाथ जी	34
15. धर्मनाथ जी	36
16. शांतिनाथ जी	37
17. कुन्थुनाथ जी	38
18. अरहनाथ जी	39
19. मल्लिनाथ जी	40
20. मुनिसुव्रतनाथ जी	41
21. नमिनाथ जी	42
22. नेमिनाथ जी	44
23. पार्श्वनाथ जी	45
24. वर्धमान स्वामी जी	47
3. तीर्थंकरों की अतिमानवीय शक्ति	50
4. चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति	63

चौबीस भगवान् की स्तुति

रागद्वेष में पड़े हुए हैं, दुःखों ने आ घेरा ।
कैसे तिरें भव-सागर से, इतना कह दो वीरा ॥
भूल हुई है हमसे भगवन्, है इसमें दोष हमारा।
हम ही सहेंगे इन कष्टों को, दे दो नाथ सहारा ॥
पहले ऋषभनाथ श्री जिन वन्दू, दूसरे अजित नाथ देव जी ।
तीसरे सम्भव नाथ श्री जिन वन्दू, चौथे अभिनन्दन देव जी ॥
पाँचवें सुमतिनाथ श्री जिन वन्दू, छठे पद्म प्रभु देव जी ॥
सातवें सुपार्श्वनाथ श्री जिन वन्दू, आठवें चन्द्र प्रभु देव जी ॥
रागद्वेष में पड़े हुए हैं, दुःखों ने आ घेरा..... ।
नवमें पुष्पन्दत श्री जिन वन्दू, दशवें शीतलनाथ देव जी ।
ग्यारहवें श्रेयांस नाथ श्री जिन वन्दू, बारहवें वासुपूज्य देव जी ॥
तेरहवें विमलनाथ श्री जिन वन्दू, चौदहवें धर्मनाथ देव जी।
पन्द्रहवें अनन्तनाथ श्री जिन वन्दू, सोलहवें शान्तिनाथ देव जी॥
रागद्वेष में पड़े हुए हैं, दुःखों ने आ घेरा..... ।
सतरहवें कुन्थुनाथ श्री जिन वन्दू, अठारहवें अरहनाथ देव जी।
उन्नीसवें मल्लिनाथ श्री जिन वन्दू, बीसवें मुनिसुव्रतदेव जी ॥
इक्कीसवें नमिनाथ श्री जिन वन्दू, बाईसवें नेमिनाथ देव जी ।
तेईसवें पार्श्वनाथ श्री जिन वन्दू, चौबीसवें महावीर देव जी ॥
रागद्वेष में पड़े हुए हैं, दुःखों ने आ घेरा..... ।

विश्व-उद्धार के लिए भगवान् को मानव रूप में प्रगट होने की अपेक्षा मानव में निहीत भगवत्-सत्ता का प्रगट होना श्रेष्ठ है ।

अध्याय-1

धर्म प्रवर्तक (तीर्थंकर)

जिसके द्वारा भव्य जीव संसार से तिरते हैं वह तीर्थ है। कुछ भव्य, श्रुत अथवा आवलम्बनभूत गणधरों के द्वारा संसार से तिरते हैं । अतःश्रुत और गणधरों को भी तीर्थ कहते हैं । इन दोनों तीर्थ को जो करते हैं, वे तीर्थंकर हैं । तीर्थ शब्द से रत्नत्रय रूप मार्ग को कहा जाता है । उसके करने से तीर्थंकर होते हैं । वे जन्मतः मति-श्रुत और अवधिज्ञान तथा दीक्षा के पश्चात् मनःपर्यय ज्ञान के धारी होते हैं। स्वर्ग से गर्भ में आने पर जन्माभिषेक और तप-कल्याणादि पाँच कल्याण में चार प्रकार के देव उनकी पूजा करते हैं । उनको मोक्ष की प्राप्ति नियम से होती है फिर भी वे अपने बल और वीर्य को न छिपाकर तप के अनुष्ठान में उद्यत रहते हैं ।

तीर्थंकर बनने के सोलह कारण

दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत् उपयोग, सतत् संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु समाधि, वैयावृत्य करना, अरिहंत आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचन भक्ति, आवश्यक क्रियाओं का न छोड़ना, मोक्ष मार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य ये तीर्थंकर बनने के कारण हैं ।

1. **दर्शन विशुद्धि** – जिन भगवान् अरिहन्त परमेष्ठी द्वारा कहे हुए निर्ग्रन्थ स्वरूप, मोक्ष मार्ग पर रुचि रखना दर्शन विशुद्धि है । इसके आठ अंग हैं- 1. निःशंकित, 2. निःकांक्षित, 3. निर्विचिकित्सा, 4. अमूढ़दृष्टिता, 5. उपवृहण, 6. स्थितिकरण, 7. वात्सल्य, 8. प्रभावना ।

2. **विनय संमन्नता** – सम्यग्ज्ञानादि मोक्षमार्ग और उनके साधन गुरू आदि के प्रति अपने योग्य आचरण द्वारा आदर-सत्कार करना विनय है और इससे युक्त होना विनय सम्पन्नता है ।

3. **शील और व्रतों का अतिचार रहित पालनकरना** – अहिंसादिक व्रत हैं

और इनके पालन करने के लिए क्रोधादिक का त्याग करना शील है । इन दोनों के पालन करने में निर्दोष प्रवृत्ति रखना शीलव्रतऽनतिचार है ।

4. **ज्ञान में सतत् उपयोग** – जीवादिक पदार्थ रूप स्वतत्त्व विषयक सम्यग्ज्ञान में निरंतर लगे रहना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है ।

5. **सतत् संवेग** – संसार के दुःखों से निरन्तर डरते रहना संवेग है।

6. **शक्ति के अनुसार त्याग** – त्याग दान है। वह चार प्रकार का है –आहार, दान, अभय दान, औषधि दान और ज्ञानदान । उसे शक्ति के अनुसार विधिपूर्वक देना यथा शक्ति त्याग है ।

7. **शक्ति के अनुसार तप** – शक्ति को न छिपाकर मोक्ष मार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश देना यथाशक्ति तप है ।

8. **साधु समाधि** –जैसे भाण्डार में आग लग जाने पर भाण्डार बहुत उपकारी होने से आग को शान्त किया जाता है इसी प्रकार अनेक प्रकार के व्रत और शीलों से समृद्ध मुनि के तप करते हुए किसी कारण से विघ्न के उत्पन्न होने पर उसका संधारण करना, शान्त करना साधु समाधि है ।

9. **वैयावृत्य करना** – गुणी पुरुष के दुःख आ पड़ने पर निर्दोष विधि से उसका दुःख दूर करना वैयावृत्य है ।

10. **अरिहंत भक्ति** – अरिहन्त भगवान् में भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, समर्पण भाव रखना अरिहंत भक्ति है ।

11. **आचार्य भक्ति**–धर्माचार के प्रति अनुराग की भावना रखना आचार्य भक्ति है ।

12. **बहुश्रुत भक्ति** – जो ज्ञान, विज्ञान के धनी हैं इसी प्रकार निर्ग्रन्थ तपोधन उपाध्याय के प्रति भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना बहुश्रुत भक्ति है।

13. **प्रवचन भक्ति** – सर्वज्ञ, वीतराग, हितोपदेशी भगवान् के प्रकृष्ट वचनों के प्रति भावों की विशुद्धि के साथ अनुराग रखना प्रवचन भक्ति है ।

14. **आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना** – आवश्यक धार्मिक क्रियाओं का यथा समय करना आवश्यक परिहाणि है ।

15. **मोक्ष मार्ग की प्रभावना** – ज्ञान, तप, दान और जिन पूजा इनके द्वारा

धर्म का प्रकाश करना मार्ग प्रभावना है ।

16. **प्रवचनवात्सल्य** – जैसे गाय बछड़े पर स्नेह रखती है उसी प्रकार साधर्मियों पर स्नेह रखना प्रवचन वात्सल्य है । ये सब सोलह कारण हैं ।

यदि अलग–अलग इनका भले प्रकार चिन्तन किया जाता है तो भी ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण होते हैं और समुदाय रूप से सबका भले प्रकार चिन्तन किया जाता है तो भी ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण हैं ।

मंगलमय पंचकल्याणक

ऊपर वर्णित महति सोलह भावनाओं से जो महापुरुष भावित हों (जो हैं) वे आगे जाकर उन भावनाओं के फलस्वरूप तीनों लोक के उपकारी धर्म तीर्थ के प्रवर्त्तक 5 कल्याणक से मंडित तीर्थंकर होते हैं –

1. गर्भ कल्याणक (स्वर्गावतरण), 2. जन्म कल्याणक, 3. दीक्षा कल्याणक (परिनिष्क्रमण), 4. केवल ज्ञान कल्याणक (बोधि लाभ), 5. मोक्ष कल्याण।

1. **गर्भ कल्याणक**– तीर्थंकर का माता के गर्भ में अवतरित होने को गर्भ कल्याणक कहते हैं । गर्भ में आने के छः महीने पहले से ही रत्नों की वर्षा होने लगती है । यह वर्षा जब तक तीर्थंकर गर्भ में रहते हैं तब तक होती है अर्थात् 15 महीने तक होती है । जब तीर्थंकर गर्भ में आते हैं तो माता को सोलह स्वप्न दिखते हैं।

2. **जन्म कल्याणक** – तीर्थंकर का माता के गर्भ से निष्क्रमण (जन्म) होने को जन्म कल्याणक कहते हैं । तीर्थंकर जन्मतः 10 अतिशय से सहित होते हैं यथा– 1. स्वेद रहितता (खेद रहितता), 2. निर्मल शरीरता, 3. दूध के समान धवल रूधिर, 4. वज्रवृषभनाराच संहनन, 5. समचतुरस्र संस्थान (शरीर), 6. अनुपम रूप, 7. नृप चम्पक की उत्तम गन्ध के समान गन्ध का धारण करना, 8. 1008 (एक हजार आठ) उत्त लक्षणों को धारण करना, 9. अनन्त बल–वीर्य, 10. हित–मित एवं मधुर भाषण ये स्वाभाविक अतिशय के दस भेद हैं । ये दस भेद रूप अतिशय तीर्थंकरों के जन्मग्रहण से ही उत्पन्न हो जाते हैं ।

अतिशय रूप सुगन्ध तन, नाहिं पसेव निहार ।
प्रियहित वचन अतुल्य बल, रूधिर श्वेत आकार ॥

लक्षण सहस रू आठ तन, समचतुष्क संठान ।
वज्रवृषभनाराच युत, ये जनमत दस जान ॥

2. **जन्माभिषेक** – बाल तीर्थंकर को इन्द्र–इन्द्राणी देवों के साथ सुमेरू पर्वत पर ले जाकर 1008 कलशों से अभिषेक करते हैं । इसे जन्माभिषेक कहते हैं।

3. **तीर्थंकर का लाञ्छन** – अभिषेक के पश्चात् भगवान के दाहिने अँगूठे में जो विशिष्ट चिन्ह रहता है, पहिचान के लिये उसको लाञ्छन चिन्ह रूप से इन्द्र घोषणा करता है । जैसे – आदिनाथ (ऋषभ देव) के दाहिने अँगूठे में वृषभ (बैल) का चिन्ह था । इसीलिये आदिनाथ भगवान् का लाञ्छन वृषभ है ।

तीर्थंकर भगवान जब तक केवल ज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं तब तक आहार करते हैं परन्तु निहार (मल–मूत्र) नहीं करते ।

4. **तप –कल्याणक** – तीर्थंकर भगवान् जब संसार–शरीर–भोगों से विरक्त होते हैं तब लौकान्तिक देव आकर उस वैराग्य की अनुमोदना करते हैं । स्वर्ग से देवगण एक दिव्य पालकी को लाते हैं । उसमें तीर्थंकर बैठकर दीक्षा स्थान को प्रयाण (गमन) करते हैं । दीक्षा स्थान में पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठकर "नमः सिद्धेभ्यः" बोलकर पंचमुष्टि केशलोंचन करते हैं फिर सम्पूर्ण अंतरंग बहिरंग परिग्रह त्याग करके निर्ग्रन्थ दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं ।

5. **केवल ज्ञान कल्याण (केवल बोधि लाभ)** – कठोर आत्म साधन से जब आत्म शुद्धि की वृद्धि होते–होते निर्मल धूम्ररहित प्रखर अग्नि के समान शुक्लध्यान अंतरंग में प्रज्ज्वलित हो उठता है तब आत्म विशुद्धि के आध्यात्मिक सोपान स्वरूप क्षपक श्रेणी में आरोहण करते–करते जब अन्तरंग मलस्वरूप ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय कर्मों को भस्म कर डालते हैं तब आत्मविशुद्धि एवं उत्तम गुण स्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य को प्राप्त करके पूर्ण तीर्थंकर अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। इस अवस्था को जैनागम में तेरहवाँ गुणस्थान अयोग केवली, जीवनमुक्त, परमात्मा, अर्हत् आदि नाम से अभिहित किया गया है । बौद्ध धर्म में इस अवस्था को बोधिसत्व, बुद्धत्व, अर्हत्, तीर्थंकर आदि कहते हैं । हिन्दू धर्म में जीवनमुक्त, परमात्मा, सशरीर परमात्मा आदि नाम से पुकारते हैं ।

केवलज्ञान के अतिशय – 1. अपने आप तीर्थंकर के पुण्य से चारों दिशाओं

में एक सौ योजन तक सुभिक्षता, 2. आकाश गमन, 3. हिंसा का अभाव, 4. भोजन का अभाव, 5. उपसर्ग का अभाव, 6. सब की ओर मुख करके स्थित होना, 7. छाया रहितता (परछाई नहीं पड़ना), 8. निर्निमेष दृष्टि, 9. विद्याओं की ईशता, 10. सजीव होते हुए भी नख और रोमों का समान होना, 11. अठारह महा भाषा, सात सौ क्षुद्र भाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समस्त अनक्षरात्मक भाषायें है उनमें तालु, दांत, ओष्ठ और कण्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजनों को दिव्य उपदेश देना । भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित और अनुपम दिव्य–ध्वनि , तीनों संध्याकालों में नव मुहूर्तों तक निकलती है । वह दिव्य ध्वनि भव्य जीवों को छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरूपण करती है । इस प्रकार घातियाँ कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए ये महान् आश्चर्यजनक ग्यारह अतिशय तीर्थंकरों को केवल ज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रकट होते हैं ।

योजन शत इक में सुभिख, गगन–गमन मुख चार।
नहिं अदया उपसर्ग नहीं, नाहीं कवलाहार ॥
सब विद्या ईश्वरपनो, नाहिं बढ़े नख -केश ।
अनिमिष दृग छाया रहित दश केवल के वेष॥

अठारह दोष रहित तीर्थंकर –समन्तभद्र आचार्य श्री ने सच्चे देव का लक्षण बताते हुए दोष रहितता के निम्न प्रकार बताये हैं –

क्षुत्पिपासाजरातङ्क जन्मान्तक -भय-स्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च, यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥6॥

1. भूख, 2. प्यास, 3. बुढ़ापा, 4. रोग, 5. जन्म, 6. मरण, 7. भय, 8. गर्व, 9. राग, 10. द्वेष, 11. मोह, 12. आश्चर्य, 13. अरति, 14. खेद, 15. शोक, 16. निद्रा, 17. चिंता, 18. स्वेद । जो इन 18 दोष से रहित होते हैं उसे आप्त (धर्मोपदेशक तीर्थंकर) कहते हैं –

जन्म जरा तिरखा क्षुधा, विस्मय आरत खेद।
रोग शोक मद मोह भय, निन्द्रा चिन्ता स्वेद॥
राग द्वेष अरू मरण युत ये अष्टादश दोष ।
नाहिं होत अरिहन्त के सो छवि लायक मोक्ष ॥

'अष्टमहाप्रातिहार्य'

अष्टमहाप्रातिहार्य निम्नोक्त प्रकार के हैं।

1. सिंहासन, 2. पुष्पवृष्टि, 3. अशोक वृक्ष, 4. छत्र त्रय, 5. 64 चमर, 6. देव दुन्दुभि, 7. भामण्डल, 8. सम्पूर्ण गण ।

अष्ट मंगल द्रव्य – 1. महाझारी, 2. कलश, 3. दर्पण, 4. पंखा, 5. ध्वजा, 6. चामर, 7. छत्र, 8. ठौना। ये आठ मंगल द्रव्य हैं। ये प्रत्येक मंगल द्रव्य 108/108 प्रमाण होते हैं ।

जिस समय तीर्थंकर भगवान् उपदेशामृत द्वारा विश्व को मंगलमय करने के लिए मंगल विहार करते हैं, उस समय अष्ट मंगल द्रव्य को लेकर देव लोग मंगल सूचना स्वरूप आगे–आगे चलते हैं ।

5. मोक्ष कल्याणक – तीर्थंकर भगवान् सत्य, अहिंसा, विश्वमैत्री का उपदेश करते हुए विभिन्न स्थानों में विहार करते हैं । अन्त में वे योग निरोध करके शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से शेष अघातियाँ कर्म नाश करके शरीर से भी मुक्त होकर (रहित) मोक्ष प्राप्त करते हैं । वे एक ही समय में 7 राजू गमन करके सिद्धशिला में विराजमान हो जाते हैं । वहाँ से पुनः संसार में वापिस नहीं आते हैं । वहाँ पर ही वे शाश्वतिक सुख का अनुभव करते हुए अनन्त काल तक विराजमान रहते हैं ।

जिस प्रकार अव्यवस्थित दक्षिण तथा उत्तर ध्रुव के कारण लोहा में चुम्बकत्व-शक्ति जागृत नहीं होती है उसी प्रकार अव्यवस्थित गुणों के कारण जीव में महान्-शक्ति प्रगट नहीं होती है और व्यवस्थित होने पर प्रगट हो जाती है ।

अध्याय-2

वर्तमान काल के चौबीस तीर्थंकर

1. आदि ब्रह्मा-ऋषभदेव

इस हुण्डावसर्पिणी काल के प्रथम धर्म प्रवर्तक आदिनाथ तीर्थंकर हुए । उनके दूसरे–दूसरे नाम वृषभनाथ या वृषभदेव, ऋषभनाथ, आदि ब्रह्मा या पुरुदेव भी थे। वे सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर अषाढ़ वदी द्वितीया को भारत की प्रसिद्ध नगरी अयोध्या के राजा नाभिराय की रानी मरूदेवी के गर्भ में आये । इसे ही गर्भ – कल्याणक कहते हैं । गर्भकाल पूर्ण होने के बाद चैत्र कृष्णा नवमी तिथि को उत्तराषढ़ –नक्षत्र में उनका जन्म हुआ इसे ही जन्म कल्याणक कहते हैं । इनका वंश इक्ष्वाकु वंश एक क्षत्रिय वर्ण (जाति) था। उनका चिन्ह (लांछन) वृषभ (बैल) था। इनकी पूर्ण आयु 84 लाख वर्ष पूर्व की थी। इनका कुमार काल अर्थात् बाल्यकाल 20 लाख वर्ष पूर्व का था। उनकी शरीर की लम्बाई (उत्सेध) 500 धनुष की थी। उनके शरीर का वर्ण शुद्ध स्वर्ण के समान था। उन्होंने 63 लाख वर्ष पूर्व तक राज्यशासन किया अर्थात् राजा रहे । एक दिन भरी राज्यसभा में नीलांजना नाम की अप्सरा का मनोहरी नृत्य हुआ । नृत्य करते–करते उसका मरण हुआ । नीलांजना के स्थान पर इन्द्र ने दूसरी देवी को भेज दिया । इस विषय का अन्य किसी को पता नहीं चला । परन्तु आदिनाथ भगवान् जन्म से ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान के धारी होने के कारण इस विषय को जानकर विरक्त हो गये एवम् वे विचार करने लगे कि मेरा जीवन भी इसी प्रकार क्षण –भंगुर है और इस क्षण–भंगुर जीवन में आसक्त होना ठीक नहीं । इस जीवन में ऐसे धर्मकार्य करने चाहिए जिससे इस जन्म के बाद पुनः जन्म–मरण न हो, जिससे संसार के दुःख भोगने न पड़ें । उनकी वैराग्य भावना की सराहना करने के लिए स्वर्ग से बालब्रह्मचारी लौकान्तिक देव आये एवं दीक्षा लेने की अनुमोदना की । आदिनाथ ने सिद्धार्थ नामक वन में जाकर षष्ठोपवास (2 दिन का उपवास) लेकर अपराह्न काल में 4000 राजाओं के साथ चैत्र–कृष्णा नवमी तिथि तथा उत्तराषाढ़ नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण की।

इसे ही दीक्षा कल्याणक कहते हैं । वे एक हजार वर्ष तक मुनि अवस्था में रहकर केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए 6 अन्तरंग, 6 बहिरंग तपश्चरण करने लगे । इसे छद्मस्थ काल या आध्यात्मिक साधना काल कहते हैं । इस कठोर तपश्चरण के कारण पुरिमताल वन में न्योग्रोध (अशोक) वृक्ष के नीचे फाल्गुन कृष्णा ग्यारस तिथि उत्तराषाढ़ नक्षत्र के पूर्वाह्न में इन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ । ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय रूपी घाति कर्म के क्षय से उन्हें केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्तवीर्य प्रकट हुआ । इसे ही अनन्त चतुष्टय कहते हैं । इस अवस्था को केवली अवस्था कहते हैं । केवल ज्ञान होने के बाद इन्द्र ने आकर समोवशरण (विश्व धर्म सभा) की रचना की एवं केवलज्ञान कल्याणक मनाया। भगवान् आदिनाथ तीर्थंकर देव ने एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व तक दिव्यध्वनि के माध्मय से धर्म का प्रचार-प्रसार किया । इनका एक विशाल धर्म संघ था। उस चतुर्विध धर्म संघ में ब्राह्मी आदि तीन लाख पचास हजार आर्यिकाएँ, वृषभसेन आदि चौरासी गणधर, चौरासी हजार ऋषि, जिनमें चार हजार सात सौ पचास पूर्वधर, चार हजार एक सौ पचास शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, बीस हजार केवली, बीस हजार छह सौ विक्रियाधारी, बारह हजार सात सौ पचास विपुलमति, बारह हजार सात सौ पचास वादि मुनि रहते थे। विश्व में सुख शांति की स्थापना करते हुए 14 दिन की योग निवृत्ति करके 10 हजार केवलियों के साथ कैलाश पर्वत से उत्तराषाढ़ नक्षत्र में पूर्वाह्न काल में शरीर सहित शेष बचे हुए अघाती कर्मों को नष्ट करके एक समय में सिद्धशिला में जाकर विराजमान हो गए। इसे मोक्षकल्याणक कहते हैं । देवों ने उत्साह पूर्वक मोक्षकल्याणक मनाया और अग्नि कुमार देव ने स्वमुकुट से अग्नि प्रज्वलित करके आदिनाथ भगवान के दिव्य शरीर का अग्नि संस्कार किया । कुछ आचार्य मानते हैं बचे हुए नख और केश का संस्कार देव लोग करते हैं ।

हिन्दू धर्म के प्राचीन साहित्य – वेद में भी ऋषभदेव का वर्णन पाया जाता है । इतना ही नहीं भागवत् पुराण में ऋषभदेव का सांगोपांग वर्णन पाया जाता है। इसके साथ साथ मार्कण्डेय पुराण, कूर्म पुराण, अग्नि पुराण, वायु व महापुराण, वराह पुराण, लिंग पुराण, विष्णु पुराण, ऋग्वेद आदि में ऋषभदेव के बारे में वर्णन पाया जाता है । विशेष जानकारी के लिये लेखक द्वारा लिखित ''युगनिर्माता –

ऋषभदेव'' नामक पुस्तक का अवलोकन तथा अध्ययन करें ।

आदिनाथ भगवान के यक्ष गोवदन (गोमुख) और यक्षिणी माँ चक्रेश्वरी थीं। इनके समोवशरण का विस्तार 12 योजन था।

आदिनाथ के विभिन्न रूप

1. जगत् के कर्त्ता–हर्ता –

अथापश्चदुच्चैर्ज्वलत्पीढ़ मूर्छिन स्थितं देवदेवं चतुर्वक्त्रशोभम् ।
सुरेन्द्रै नरेन्द्रै मुन्द्रैश्च बन्धं जगतसृष्टि संहारयोर्हेतुमादाम् ॥ 12 ॥

जो ऊँची और देदीप्यमान पीठिका के ऊपर विराजमान थे, देवों के भी देव थे, चारों ओर दिखने वाले चारमुखों को शोभा से सहित थे, सुरेन्द्र, नरेन्द्र और मुनीन्द्रों के द्वारा वंदनीय थे, जगत की सृष्टि (मोक्ष मार्ग रूपी सृष्टि को उत्पन्न करने वाले) और संहार कर्त्ता (पापरूपी सृष्टि को संहार करने वाले) के मुख्य कारण थे।

2. स्वयंभू–

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि ।
स्वात्मनैव तथोद्भुत वृत्तये ऽचिन्त्य वृत्तये ॥ 66 ॥

आदिपुराण पर्व–25

हे नाथ ! आप अपने आत्मा में ही आत्मा के द्वारा, अपने आत्मा को उत्पन्न कर प्रकट हुए हैं, इसलिए आप स्वयंभू अर्थात् अपने आप उत्पन्न हुए कहलाते हैं। इसके सिवाय आपका माहात्म्य भी अचिन्त्य है, अतः आपको नमस्कार हो ।

3. विश्व के स्वामी –

नमस्ते जगदां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते ।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतां वर ॥ 67 ॥

आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो और आप लक्ष्मी के भर्त्ता हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो और आप वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो ।

4. अनंतजित् –

ध्यान द्रुघण निर्भिन्न घनघाति महातरूः ।
अनन्त भव सन्तान जयादासीद नन्तजित् ॥ 69 ॥

आपने ध्यानरूपी कुठार से अतिशय मजबूत घातिया कर्म रूपी बड़े भारी वृक्ष को काट डाला है तथा अनन्त संसार की सन्तति को भी आपने जीत लिया है इसलिये आप अनन्तजित् कहलाते हैं ।

5. **मृत्यंजय –**

त्रैलोक्या निर्जया वाप्तदुर्दर्प मति दुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिनमृत्युञ्जयो भवान् ॥ 70॥

हे जिनेन्द्र देव ! तीनों लोकों को जीत लेने से जिसे भारी अहंकार उत्पन्न हुआ है और जो अत्यन्त दुर्जय है ऐसे मृत्युराज को भी आपने जीत लिया है ,इसलिये आप मृत्युञ्जय कहलाते हैं ।

6. **त्रिपुरारि –**

विधुताशेष संसार बन्धनो भव्य बान्धवः ।
त्रिपुरारिस्त्व मीशासि जन्ममृत्युजरान्तकृत् ॥ 71॥

आपने संसाररूपी समस्त बन्धन नष्ट कर दिये हैं, आप भव्य जीवों के बन्धु हैं, आप जन्म, मरण और बुढ़ापा तीनों का नाश करने वाले हैं इसलिए आप त्रिपुरारि कहलाते हैं ।

7. **त्रिनेत्र –**

त्रिकाल विषया शेष तत्व भेदात् त्रिधोत्थितम् ।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥ 72॥

हे ईश्वर ! जो तीनों काल विषयक समस्त पदार्थों को जानने के कारण तीन प्रकार से उत्पन्न हुआ कहलाता है, ऐसे केवलज्ञान नामक नेत्र को आप धारण करते हैं इसलिये आप ही त्रिनेत्र कहलाते हैं ।

8. **अन्धकान्तक –**

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर मर्दनात् ।
अर्ध ते नारयो यस्मादर्ध नारीश्वरोऽस्यतः ॥ 73॥

आपने मोहरूपी अन्धासुर को नष्ट कर दिया है, इसलिए विद्वान् लोग आपको ही अन्धकान्तक कहते हैं ।

9. **अर्धनारीश्वर –** 8 कर्म रूपी शत्रुओं में से आपके आधे अर्थात् चार घातिया कर्मरूपी शत्रुओं के ईश्वर नहीं है इसलिए आप अर्धनारीश्वर

(अर्ध+न+अरि+ ईश्वर=अर्धनारीश्वर) कहलाते हैं ।

10. **शिव –**

शिवः शिवपदाध्यास्त्रद् दुरितारि हरो हरः ।
शंकरः कृतशं लोके शंभवस्त्वं भवन्सुखे ॥ 74॥

आप शिव पद अर्थात् मोक्षस्थान में निवास करते हैं इसलिए शिव कहलाते हैं ।

11. **हर –** पाप रूपी शत्रुओं का नाश करने वाले हैं इसलिए हर कहलाते हैं ।

12. **शङ्कर –** लोक में शान्ति करने वाले हैं इसलिए शङ्कर कहलाते हैं ।

13. **संभव –** सुख से उत्पन्न हुए हैं इसलिए सम्भव कहलाते हैं ।

14. **वृषभ –**

वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरुगुणोदयैः ।
नाभेयो नाभि संभूतेरिक्ष्वाकु कुलनन्दनः ॥ 75॥

जगत में श्रेष्ट हैं, इसलिए 'वृषभ' कहलाते हैं ।

15. **पुरु–** अनेक उत्तम गुणों का उदय होने से पुरु कहलाते हैं ।

16. **नाभेय –**नाभिराज से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए नाभेय कहलाते हैं ।

17. **इक्ष्वाकुकुलनन्दन –** इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए इक्ष्वाकुकुलनन्दन कहलाते हैं ।

18. **सद्योजात –**

स्वर्गावतरणेतुभ्यं सद्योजातात्मने नमः ।
जन्माभिषेक रक्ताय वामदेव नमोऽस्तु ते ॥ 78॥

हे नाथ ! आप स्वर्गावतरण के समय सद्योजात अर्थात् शीघ्र ही उत्पन्न होने वाले कहलाये थे, इसलिए आपको नमस्कार हो ।

19. **वामदेव –** आप जन्माभिषेक के समय बहुत सुन्दर जान पड़ते थे, इसलिए हे वामदेव ! आपको नमस्कार हो ।

20. **ईश्वर –**

सन्निष्क्रान्तावघोराय परं प्रशममीयुषे ।
केवल ज्ञान संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ॥ 79॥

दीक्षा कल्याण के समय आप परम शान्ति को प्राप्त हुए और केवलज्ञान के

प्राप्त होने पर परम पद को प्राप्त हुए तथा ईश्वर कहलाये । इसलिये आपको नमस्कार हो ।

21. **विभु –**

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः ।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ 102 ॥

समस्त पदार्थों को देखने वाले हैं, इसलिए आप विश्वदृश्वा हैं । केवलज्ञान की अपेक्षा सब जगह व्याप्त हैं अथवा सब जीवों को संसार से पार कराने में समर्थ हैं अथवा परमोत्कृष्ट विभूति से सहित हैं, इसलिए विभु हैं ।

22. **धाता–** संसारी जीवों का उद्धार कर उन्हें मोक्षस्थान को धारण कराने वाले हैं, पहुँचाने वाले हैं अथवा मोक्ष मार्ग की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए धाता कहलाते हैं ।

23. **विश्वेश–** समस्त जगत् के ईश्वर हैं इसलिए विश्वेश कहलाते हैं ।

24. **विश्वलोचन –**सब पदार्थों को देखने वाले हैं अथवा सबका हित सन्मार्ग का उपदेश देने के कारण सब जीवों के नेत्रों के समान हैं, इसलिए विश्वलोचन कहे जाते हैं ।

25. **विश्वव्यापी –** संसार के समस्त पदार्थों को जानने के कारण आपका ज्ञान सब जगह व्यापत है इसलिए आप विश्वव्यापी कहलाते हैं ।

26. **विधि –** आप समीचीन मोक्षमार्ग का विधान करने से विधि कहलाते हैं।

27. **वेधा–** धर्मरूप जगत् की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए वेधा कहलाते हैं ।

28. **शाश्वत –** सदा विद्यमान रहते हैं, इसलिए शाश्वत कहलाते हैं ।

29. **विश्वतोमुख –** समवशरण में आपका मुख चारों दिशाओं में दिखता है अतः आप विश्वतोमुख अथवा जल की तरह पाप रूपी पंक को दूर करने वाले स्वच्छ तथा तृष्णा को नष्ट करने वाले हैं, इसलिए आप विश्वतोमुख कहे जाते हैं।

30. **विश्वकर्मा –**

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः ।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ 103 ॥

आपने कर्मभूमि की व्यवस्था करते समय लोगों की आजीविका के लिए

असि, मसि आदि सभी कर्मों–कार्यों का उपदेश दिया था, इसलिए आप विश्वकर्मा कहलाते हैं ।

31. **जगज्ज्येष्ठ –** आप जगत् में सबसे ज्येष्ट अर्थात् श्रेष्ठ हैं, इसलिए जगज्ज्येष्ट कहे जाते हैं ।

32. **विश्वमूर्ति –** आप अत्यन्त गुणमय हैं अथवा समस्त पदार्थों के आकार आपके ज्ञान में प्रतिफलित हो रहे हैं, इसलिए आप विश्व मूर्ति हैं ।

33. **जिनेश्वर –**कर्मरूप शत्रुओं को जीतने वाले सम्यग्दृष्टि आदि जीवों के आप ईश्वर हैं, इसलिए जिनेश्वर कहलाते हैं ।

34. **विश्वभूतेश–** समस्त प्राणियों के ईश्वर हैं, इसलिये विश्वभूतेश कहे जाते हैं ।

35. **विश्वदृक् –**आप संसार के समस्त पदार्थों का सामान्यवलोकन करते हैं, इसलिए विश्वदृक् कहलाते हैं ।

36. **विश्वज्योति –** आपकी केवल ज्ञानरूपी ज्योति अखिल संसार में व्याप्त है, इसलिए आप विश्वज्योति कहलाते हैं ।

37. **अनीश्वर –**आप सबके स्वामी हैं किन्तु आपका कोई स्वामी नहीं है, इसलिये आप अनीश्वर कहे जाते हैं ।

38. **युगादि पुरुष –**

युगादि पुरुषो ब्रह्मा पञ्च ब्रह्ममयः शिवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥ 105 ॥

आप इस कर्मभूमि रूपी युग के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए थे, इसलिये आदि पुरुष कहे जाते हैं ।

39. **ब्रह्मा–** केवलज्ञान आदि गुण आप मे ब्रंहण अर्थात् वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, इसलिये आप ब्रह्मा कहे जाते हैं ।

40. **पंच ब्रह्ममय –**आप पंच परमेष्ठी स्वरूप हैं, इसलिये पंच ब्रह्ममय कहलाते हैं ।

41. **शिव–**शिव अर्थात् मोक्ष अथवा आनन्द रूप होने से शिव कहे जाते हैं ।

42. **पर–** आप सब जीवों का पालन अथवा समस्त ज्ञान आदि गुणों को

पूर्ण करने वाले हैं, इसलिये पर कहलाते हैं ।

43. **परतर** – संसार में सबसे श्रेष्ट हैं, इसलिए परतर कहलाते हैं ।

44. **सूक्ष्म** –इन्द्रियों के द्वारा आपका आकार नहीं जाना जा सकता अथवा नामकर्म का क्षय हो जाने से आपमें बहुत शीघ्र सूक्ष्मत्व गुण प्रकट होने वाला है, इसलिये आपको सूक्ष्म कहते हैं ।

45. **परमेष्ठी** –परमपद में स्थित हैं, इसलिये परमेष्ठी कहलाते हैं ।

46. **सनातन** –सदा एक से ही विद्यमान रहते हैं, इसलिये सनातन कहे जाते हैं ।

47. **सहस्रशीर्ष** –अनन्त सुखी होने से सहस्रशीर्ष कहलाते हैं ।

48. **क्षेत्रज्ञ** –क्षेत्र अर्थात् आत्मा को जानने से क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं ।

49. **सहस्राक्ष** – अनन्त पदार्थों को जानते हैं इसलिये सहस्राक्ष कहे जाते हैं ।

50. **सहस्रपात** – अनन्त बल के धारक हैं, इसलिये सहस्रपात कहलाते हैं ।

51. **भूतभव्यभवद्भर्ता** –भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल के स्वामी हैं इसलिये भूतभव्यभवद्भर्ता कहलाते हैं ।

52. **विश्वविद्यामहेश्वर**– समस्त विद्याओं के प्रधान स्वामी हैं, इसलिए विश्वविद्यामहेश्वर कहलाते हैं ।

53. **बुद्ध**–

बुद्धो दशबलः शाक्यः षडभिज्ञस्तथागतः ।
समन्त भद्रः सुगतः श्रीघनो भूतकोटिदिक् ॥ 110 ॥ जिन सहस्रनाम

हे बोधि के निधान ! आप केवल ज्ञान रूप बुद्धि के धारण करने वाले हैं, इसलिए बुद्ध कहलाते हैं अथवा सर्व जगत को जानते हैं, इसलिए भी बुद्ध कहलाते हैं ।

54. **दशबल** – आपके क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दश धर्म बल अर्थात् सामर्थ्य रूप हैं, इसलिये आप दशबल कहलाते हैं अथवा "द" शब्द दया और बोध का वाचक है, इन दोनों के द्वारा आप सबल अर्थात् सामर्थ्यवान् हैं इसलिए भी योगीजन आपको दशबल कहते हैं । श्लेषार्थ की अपेक्षा 'स' और 'श' में बोध नहीं होता । बौद्धमत में बुद्ध के दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान, शान्ति, सामर्थ्य, उपाय, प्राणिधान और ज्ञान ये दशबल माने गये हैं ।

55. **शाक्य** – जो सर्वशक्ति वाले कार्यों के करने में समर्थ हो, उसे शक कहते हैं, इस निरूक्ति के अनुसार तीर्थंकरों के पिता शक कहे जाते हैं । आप उनके पुत्र हैं इसलिए शाक्य कहलाते हैं । अथवा "श" अर्थात् सुख और अक यानी ज्ञान को धारण करने से भी आप शाक्य कहलाते हैं । बौद्धमत में बुद्ध को शक राजा का पुत्र माना जाता है ।

56. **षड्भिज्ञ** – जीवादि छह द्रव्यों को उनके अनन्त गुणों और पर्यायों के साथ भली–भाँति जानने से आप षड्भिज्ञ कहलाते हैं । बुद्ध के दिव्य चक्षु, दिव्य श्रोतृ, पूर्वभवस्मरण, परिचित्तज्ञान, आस्रवक्षय और ऋद्धि ये छह अभिज्ञा मानी जाती हैं, इसलिए उन्हें षड्भिज्ञ कहते हैं ।

57. **तथागत** – आपने वस्तु स्वरूप को तथा कहिए यथार्थ, गत अर्थात् जान लिया है इसलिए आप तथागत कहलाते हैं ।

58. **समन्तभद्र** –आप समन्तात् अर्थात् सब ओर से भद्र हैं, जगत् के कल्याण कर्त्ता हैं अथवा आपका स्वभाव अत्यन्त भद्र है, इसलिए आप समन्तभद्र कहलाते हैं ।

59. **सुगत** –सुन्दर गत अर्थात् गमन करने से अथवा सुन्दरगत अर्थात् केवलज्ञान धारण करने से आप सुगत कहलाते हैं अथवा सुन्दर और आगे गमन करने वाली 'ता' कहिए लक्ष्मी आपके पास पायी जाती है, इसलिए भी आप सुगत कहलाते हैं ।

60. **श्रीघन**– श्री अर्थात् रत्न सुवर्णादि रूप लक्ष्मी को वर्षाने के लिए आप घन के समान हैं क्योंकि आपके स्वर्गावतार के पूर्व से ही भूतल पर रत्न सुवर्ण की वर्षा होने लगती है । इसलिए आप श्रीघन कहलाते हैं अथवा केवलज्ञान रूप लक्ष्मी से आप घनीभूत अर्थात् निवृत्त हैं, अखण्ड ज्ञान के पिण्ड हैं ।

61. **भूतकोटिदिक्** – भूत अर्थात् प्राणियों की कोटि कहिए, अनन्त संख्या का उपदेश देने के कारण आप भूतकोटिदिक् कहलाते हैं । आपके मतानुसार प्राणियों की संख्या अनन्त है, निरन्तर मोक्ष को जाने पर भी उनका कभी अन्त नहीं आता अथवा प्राणियों के कोटि–कोटि पूर्व और उत्तर भवों को आप जानते हैं और उनका उपदेश देते हैं अथवा प्राणियों को जो मिथ्या उपदेश के द्वारा कोटियन्ति कहिए, आकुल–व्याकुल करते हैं, ऐसे जैमिनि, कपिल, कणाद आदि को भी आप सन्मार्ग

का उपदेश देते हैं, अतः भूतकोटिदिक् कहलाते हैं अथवा जीवों के कोटि अर्थात् ज्ञानादि गुणों की अतिशय वृद्धि का उपदेश देते हैं अथवा अनन्त प्राणियों के आप विश्राम स्थानभूत हैं, उनके आश्रयदाता हैं, इसलिए भी आपका यह नाम सार्थक है ।

62. **सिद्धार्थ –**

सिद्धार्थो मारजिच्छास्ता क्षणिकैक सुलक्षण ।
बोधिसत्वो निर्विकल्प दर्शनोऽद्वयवाद्यपि ॥ 111 ॥ जिन सहस्रनाम

आप के अर्थ अर्थात् चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो चुके हैं, अतः आप सिद्धार्थ हैं अथवा सिद्ध अवस्था को प्राप्त करना ही आपका अर्थ कहिए, प्रयोजन है अथवा जीव–अजीव आदि नव पदार्थ आपके द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिये आप सिद्धार्थ कहलाते हैं अथवा मोक्ष का कारण भूत अर्थ कहिए रत्नत्रय आपको सिद्ध हुआ है, इसलिये भी आपका नाम सार्थक है ।

63. **मारजित** –मार अर्थात् काम विकार के जीत लेने से आप मारजित कहलाते हैं अथवा 'मा' अर्थात लक्ष्मी जिनके समीप रहती है ऐसे इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्रादि को मार कहते हैं, उन्हें अपने दिव्य उपदेश के द्वारा जीत लिया है । बुद्ध ने स्कन्धमार, क्लेशमार, मृत्युमार और देव–पुत्रमार इन चारों मारों को जीता था इसलिए उन्हें मारजित कहते हैं ।

64. **शास्ता**–सत्यधर्म का उपदेश देने के कारण आप शास्ता कहलाते हैं।

65. **क्षणिकैकसुलक्षण** –सभी पदार्थ क्षणिक हैं अर्थात् प्रति समय उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रूप है, एक रूप स्थायी नहीं है, इस प्रकार का एक अर्थात् अद्वितीय सुन्दर सर्वज्ञता का प्रतिपादक लक्षण आप में पाया जाता है, अतः आप क्षणिकैकसुलक्षण कहलाते हैं ।

66. **बोधिसत्त्व** –रत्नत्रय की प्राप्ति को बोधि करते हैं, इस बोधि का सत्व अर्थात् शक्ति रूप से अस्तित्व सर्व प्राणियों में पाया जाता है । इस प्रकार का उपदेश देने के कारण आप बोधिसत्त्व कहलाते हैं अथवा बोधिरूप सत्व अर्थात् बल आप में पाया जाता है ।

67. **निर्विकल्प दर्शन**– आपने दर्शन को सत्ता मात्र का ग्राहक और निर्विकल्प अर्थात् विकल्प शून्य प्रतिपादन किया है, अतः आप निर्विकल्प दर्शन कहलाते हैं अथवा आपने मतान्तर रूप अन्य दर्शनों को निर्विकल्प अर्थात् विचार

शून्य प्रतिपादन किया है क्योंकि उनका कथन प्रमाण से बाधित है ।

68. **अद्वयवादी**– एक–अनेक, नित्य–अनित्य, सत्–असत् आदि द्वैतों को द्वय कहते हैं आपने इन सबको अप्रमाणित कहा है, अतः आप अद्वयवादी कहलाते हैं अथवा निश्चयनय के अभिप्राय से आत्मा और कर्मरूप द्वैत नहीं हैं, ऐसा आपने कथन किया है इसलिए आपको अद्वयवादी कहते हैं ।

69. **योग –**

योगो वैशेषिकस्तुच्छाभावाभित्षट् पदार्थ दृक् ।
नैयायिकः षोडशार्थवादि पंचार्थ वर्णकः ॥ 114 ॥

हे भगावन् ! आपमें ध्यान रूप योग पाया जाता है, अतः आप योग है।

70. **वैशेषिक** – इन्द्रियज ज्ञान को सामान्य और अतीन्द्रिय ज्ञान को विशेष कहते हैं । आप अतीन्द्रिय केवल ज्ञान के धारी हैं, अतः वैशेषिक कहलाते हैं ।

71. **तुच्छाभावभित्**– वैशेषिकों ने अभाव को भवान्तर स्वभावी न मानकर तुच्छ अर्थात् शून्य रूप माना है परन्तु आपने उसका खण्डन करके उसे भवान्तर स्वभावी अर्थात् अन्य पदार्थ के सद्भाव स्वरूप सिद्ध किया है, अतः आप तुच्छाभावभित् कहलाते हैं ।

72. **षट् पदार्थ दृक्** – वैशेषिकों ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय नामक छह पदार्थों को भावात्मक माना है पर आपने उनका सबल युक्तियों से खण्डन कर जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह पदार्थों का उपदेश दिया है, अतः आप षट् पदार्थ दृक् कहलाते हैं ।

73. **नैयायिक** –जिसके द्वारा पदार्थ ठीक–ठाक जाने जाते हैं उसे न्याय कहते हैं, आप स्याद्वाद न्याय के प्रयोक्ता हैं, अतः नैयायिक कहलाते हैं ।

74. **षोडशार्थवादी**– नैयायिक मतवाले प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान इन सोलह पदार्थों को मानने के कारण षोडशार्थवादी कहलाते हैं । परन्तु आपने बताया कि दूसरों को छल, जाति आदि के द्वारा वचन जाल में फँसाकर जीतने का नाम न्याय नहीं है और न ही संशय, छल, वितण्डा, जाति आदि से पदार्थपना बनता है । इसके विपरीत आपने दर्शन, विशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, अभीक्ष्ण संवेग, शक्तितस्त्याग शक्तितस्तप,

साधु समाधि, वैयावृत्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्ग प्रभावना और प्रवचन वत्सलत्व ये तीर्थंकर प्रकृति के उपार्जन कराने के कारण प्रयोजनभूत 16 पदार्थों का उपदेश दिया है, अतः आप ही सच्चे षोडशार्थवादी हैं ।

75. **पंचार्थवर्णक** – आपने पंच अस्तिकाय रूप अर्थों का वर्णन किया है, अतः आप पंचार्थवर्णक कहलाते हैं ।

76. **सांख्य**–

सांख्यः समीक्ष्यः कपिलः पंचविंशतितत्ववित् ।
व्यक्ता व्यक्तज्ञ विज्ञानी ज्ञानचैतन्य भेददृक् ॥ 116॥

संख्या अर्थात् गणना किये जाने पर ईश्वर के अन्वेषण किये जाने पर आदि में, मध्य में या अन्त में आप ही प्राप्त होते हैं । आपके अतिरिक्त अन्य कोई परमेश्वर की गिनती में नहीं आता, अतः आपको लोग सांख्य कहते हैं ।

77. **समीक्ष्य** –आप सम्यक् अर्थात् अच्छी तरह ईक्ष्य कहिए देखने के योग्य हैं, अतः समीक्ष्य कहलाते हैं अथवा समी कहिए समभाव वाले योगियों के द्वारा ही आप ईक्ष्य हैं, दृश्य हैं, अन्य के अगोचर हैं, अतएव समीक्ष्य कहे जाते हैं ।

78. **कपिल** – कपि अर्थात् बन्दर के समान चंचल मन को जो लावे अर्थात् वश में करे, आत्मा में स्थापित करे, उसे कपिल कहते हैं अथवा क अर्थात् परमब्रह्म को भी जो लावे उसे कपिल कहते हैं । आपने अपने ध्यान के बल से परमब्रह्म स्वरूप प्रात किया है और जीवात्मा से परमात्मा बने हैं अतः आप कपिल कहलाते हैं ।

79. **पंचविंशति तत्ववित्** – अहिंसादि पाँचों व्रतों को 25 भावनाओं के तत्व अर्थात् रहस्य को जानने के कारण अथवा आस्रव के कारणभूत सम्यक्त्व क्रिया आदि 25 क्रियाओं के स्वरूप को हेयोपादेय रूप से जानने के कारण आप पंचविंशति तत्ववित् कहलाते हैं । सांख्य लोग प्रकृति, महान्, अहंकार आदि 25 तत्वों को मानते हैं और उन्हें जानने के कारण कपिल को पंचविंशति तत्ववित् कहते हैं ।

80. **व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी** – व्यक्त अर्थात् इन्द्रियों के गोचर ऐसे संसारी जीव और अव्यक्तज्ञ अर्थात् इन्द्रियों के अगोचर ऐसे सिद्ध जीव, इन दोनों के अन्तर को आप भली–भाँति जानने वाले हैं, इसीलिए आप व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी कहलाते

हैं । सांख्य मत में प्रकृति से उत्पन्न होने वाले 24 तत्त्वों में से कुछ को व्यक्त और कुछ को अव्यक्त माना गया है और आत्मा या पुरुष को ज्ञाता माना गया है । कपिल उन सबके विवेक या भेद को जानता है, इसलिए उसे व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानी कहते हैं ।

81. **ज्ञान चैतन्य भेददृक्**– ज्ञान के 5 भेद हैं और चेतना के ज्ञान चेतना, कर्म चेतना और कर्मफल चेतना ये तीन भेद हैं । केवली भगवान् के ज्ञान चेतना ही होती है । स्थावर जीवों के कर्मफल चेतना ही होती है । त्रस जीवों के कर्म चेतना और कर्मफल चेतना ये दो होती हैं । आप ज्ञान और चैतन्य अर्थात् चेतना के भेदों या उनके पारस्परिक सम्बन्ध के यथार्थ दर्शी हैं, अतः ज्ञान चैतन्य भेददृक कहलाते हैं । इसी प्रकार और भी अनन्तानन्त गुण–धर्म/विशेषतायें भ. आदिनाथ में होती है । ऐसा ही अन्य तीर्थंकरों में भी जान लेना चाहिए ।

विभिन्न भारतीय वाङ्मय के अध्ययन से सिद्ध होता है कि ऋषभदेव एक महान् धर्म, समाज, शिक्षा, कला, राजनीति, जीवन निर्वाह प्रणाली के समर्थ आविष्कारक, संस्थापक, प्रचारक, प्रसारक थे। आदिनाथ भगवान का व्यापक कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण इहलोक, परलोक, ज्ञान–विज्ञान्, सभ्यता, संस्कृति, व्यक्ति–समष्टि में था। भोगभूमि के अवसान के पश्चात् कर्मभूमि के प्रारम्भ के समय में जो जटिल परिस्थितियाँ मनुष्य समाज के सम्मुख आई थीं, उनको आदिनाथ ने स्वप्रज्ञा से समाधान करके एवं उचित मार्ग समाज को दृष्टिगोचर कराकर समाज सुधार करके कर्मभूमि की व्यवस्था की, स्थापना की थी। यौवनावस्था में स्वयं समाज नेता (राजा) बनकर तथा सर्व संन्यास व्रत धारण कर केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् मोक्षमार्ग का आविष्कार–साक्षात्कार, संस्थापना एवं प्रचार करके विश्व को विभिन्न नवीन विचारधारा एवं नवीन जीवन पद्धति देने के कारणों से वे आदि ब्रह्मा रूप में प्रख्यात हुए । इसलिए आदिनाथ भगवान् प्रजापति, ब्रह्मा, सृष्टिकर्ता , विधाता कहलाये।

असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि जीवन निर्वाह प्रणाली बताने से, राज्य शासन काल में प्रजाओं को न्यायनीति से पालन करने से तथा तीर्थंकर अवस्था में चतुर्विध संघ एवं द्वादशविध गणों को परिचालन –संचालन करने के कारण पालनकर्ता विष्णु स्वरूप हुए ।

कर्मभूमि के संक्रमण काल में भयभीत प्रजाओं को उचित मार्ग दिखाकर उनका भय नष्ट करने के कारण, राजा बनकर न्यायानुशासन से अन्याय का निरासन करने से, निर्ग्रन्थ मुनि बनकर रत्नत्रय रूपी त्रिशूल से मोहान्धकार रूपी राक्षस का संहार करने से, देवाधिदेव तीर्थंकर बनकर दिव्य अमृतमयी वाणी से, भव्यों के कर्म कलंक को नाश करने से तथा अन्त में द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रूपी संसार को विध्वंस करके सदाशिव रूपी सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के कारण महेश (रुद्र) स्वरूप हुए ।

वृषभदेव बनाम वृषध्वज (महादेव)

जैन दर्शन तथा हिन्दुओं के भागवत् पुराण में वर्णित वृषभदेव तथा हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध देव वृषध्वज (महेश) में एक आश्चर्यजनक साम्य है । हिन्दू धर्मानुसार वृषभदेव का लाञ्छन (चिह्न) वृषभ है । वृषभ का अन्य अर्थ 'धर्म तथा श्रेष्ट' होताहै। जो धर्म में श्रेष्ट है,वही वृषभ है ।

हिन्दू धर्मानुसार महेश का निवास स्थान कैलाश पर्वत है । जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान की साधना, विहार एवं परिनिर्वाण स्थल कैलाश पर्वत है ।

हिन्दू धर्मानुसार महादेव त्रिशूलधारी हैं एवं त्रिशूल के माध्यम से अंधकासुर का वध किया था। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक् चारित्र रूपी त्रिशूल (रत्नत्रय) से मोहांधकार रूपी वैरी का विध्वंश किया था।

हिन्दू धर्म में वर्णित हैं कि महेश के अर्धअंग स्त्री (पार्वती) और अर्धअंश पुरुष (ईश्वर) स्वरूप है । इसलिए महेश अर्धनारीश्वर स्वरूप है । जैन धर्मानुसार वृषभदेव ने घातिकर्म रूपी अर्ध अंतरंग शत्रुओं को विध्वंश करके ईश्वरत्व (तीर्थंकरत्व) अवस्था को प्राप्त किया था, इसीलिए अर्धनारीश्वर कहलाये । अर्धनारीश्वर का अर्थ 'जीवन्मुक्त परमात्मा' होता है ।

हिन्दू धर्मानुसार महादेव ने कामदेव को तृतीय नेत्र से भस्म किया था। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् ने आध्यात्मिक ज्ञानरूपी तृतीय नेत्र से अंतरंग कामवासना को नष्ट किया था। महादेव का तीसरा नेत्र जैन धर्मानुसार अन्तर्दृष्टि

आध्यात्मिक ज्ञान या केवलज्ञान है ।

हिन्दू धर्मानुसार महेश विशेषतः श्मशान में संचार करते थे। जैन धर्मानुसार वृषभदेव ध्यान साधना के लिये एकान्त वनप्रदेश, श्मशान में भी रहते थे।

हिन्दूधर्मानुसार रुद्र विभूति धारण करते थे। जैन दर्शनानुसार आदिनाथ भगवान् आध्यात्मिक विभूति के धारक थे।

महादेव भूतनाथ थे। जैन दर्शनानुसार आदिनाथ, भूत अर्थात् प्राणी मात्र के उद्धारक तथा उपदेशक होने के कारण प्राणियों के उपकारक (भूतनाथ) थे।

हिन्दू धर्मानुसार ईश्वर जटाधारी थे। जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् दीक्षा के अनन्तर 6 महीने तक योग साधना धारण करने के कारण केशलोंच नहीं कर पाये थे। इसलिए केश बढ़कर जटारूप हो गये थे।

हिन्दू धर्मानुसार महेश 'महादेव' हैं । जैन धर्मानुसार आदिनाथ भगवान् चतुर्निकाय देव एवं 100 इन्द्रों से पूजित होने के कारण महादेव हैं ।

हिन्दू धर्म में महेश को शिवशंकर कहते हैं । आदिनाथ भगवान् समस्त कर्मों को नाश करके शाश्वतिक मोक्षपद प्राप्त करने के कारण शिव (शाश्वतिक, मंगल) है । शङ्कर (पवित्र करने वाले) हैं ।

उपरोक्त अनेक सन्दर्भों में एक विचित्र साम्य दृष्टिगोचर होता है । इसमें जो विषमता है वह केवल वर्णनात्मक प्रणाली के कारण है । हिन्दू धर्म में जो महेश का वर्णन है, वह स्थूल बाह्य अलंकार है । जैन दर्शन में जो वर्णन है, वह सूक्ष्म, अंतरंग एवं आध्यात्मिक यथार्थपरक है । प्राचीन काल में कवि, लेखक, उपदेशक ऋषि जटिल गूढ़ रहस्य को साधारण जन के बोधगम्य के लिये रूपक अलंकारात्मक भाषा में आदर्श को प्रतिपादन करते थे। जैन दर्शन में जो ऋषभदेव का सूक्ष्म आध्यात्मिक यथार्थ वर्णन है, वही सत्य स्वरूप का वर्णन रूपक भाषा में , हिन्दू धर्म में किया गया है । अतः वृषभदेव ही वृषध्वज (वृषभचिह्नित) हैं। वृषभ लाञ्छित वृषभदेव ही वृषध्वज सिद्ध होते हैं परन्तु कालक्रम से दोनों में सत्य व आदर्श में भिन्नता होते-होते अनन्तः पूर्ण भिन्न हो गया है । विशेष जिज्ञासु मेरे द्वारा रचित ''युग निर्माताः ऋषभदेव '' का अध्ययन करें ।

2. अजितनाथ तीर्थंकर

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी कश्यप गोत्री राजा जितशत्रु राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम विजय सेना था। उन दोनों के पूर्व पुण्योदय से जेठ बदी 15 को अजितनाथ भगवान् का जीव विजय नामक अनुत्तर स्वर्ग के सुखों को भोगकर गर्भ में आया। उन्होंने प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्ष चले जाने के बाद पचास लाख करोड़ सागर वर्ष बीतने पर माघ, शुक्ला दसमी, रोहिणी नक्षत्र में जन्म लिया । इस बेला पर चारों निकाय के देवों ने जन्म कल्याणक सम्बन्धी उत्सव मनाया तथा अजितनाथ उनका नाम रखा। शुभ लक्षणों के कारण हाथी का चिह्न रखा, उनकी आयु 72 लाख पूर्व की थी, जिसमें कुमार काल 18 लाख पूर्व का था। जब यौवन अवस्था में आए तब पिता से प्राप्त राज्य पर 53 लाख पूर्वांग वर्ष तक राज्य किया । उनके शरीर की ऊँचाई 450 धनुष थी, शरीर का वर्ण –सुवर्ण सा था ।

किसी एक दिन उल्कापात देखकर संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर माघ शुक्ल नवमी के दिन सहेतुक वन में जाकर रोहिणी नक्षत्र में एक हजार जनों के साथ 2 दिन (अष्टम भक्त) के उपवास पूर्वक दीक्षा ली। तत्पश्चात् 12 वर्ष तक घोर तपस्या कर पौष शुक्ला चतुर्दशी के दिन सहेतुक वन में ही रोहिणी नक्षत्र में अपराह्न काल में केवलज्ञान प्राप्त किया और चतुर्विध संघ सहित विहार करने लगे। उनके साथ में सिंहसेन आदि 90 गणधर थे, 1,00,000 ऋषि में से 3,750 पूर्वधर 21,600 शिक्षक, 9,400 अवधिज्ञानी, 20,000 केवली, 20,400 विक्रियाधारी, 12,450 विपुलमति, 12,400 वादी, 320000 प्रकुब्जा आदि आर्यिका 3,00,000 श्रावक, 500000 श्राविकाएँ थीं । इतने विशाल चतुर्विध संघ को वे 11-1/2 योजन प्रमाण समवशरण में देशना देते थे । यह समवशरण देव निर्मित था, जिसमें अशोक वृक्ष आदि अष्ट प्रतिहार्य थे। उसके महायक्ष नामक यक्ष, रोहिणी नामक यक्षिणी थी जिसे शासन देवी, देवता कहा जाता था।

इस प्रकार 1 लाख 1 पूर्वांग + 12 वर्ष तक धर्म की देशना देकर सम्मेदाचल पर 1000 मुनियों समेत 1 माह का योग निरोध करके चैत्र शुक्ला पंचमी के दिन वे निर्वाण को प्राप्त हुए।

3. सम्भवनाथ तीर्थंकर

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में श्रावस्ती नगर में इक्ष्वाकुवंशी कश्यप गोत्री दृढ़स्थ राजा राज्य करते थे। उसकी महारानी सुषेणा थी। दोनों के पूर्व कृत पुण्य से सम्भवनाथ तीर्थंकर का जीव अधोग्रैवेकयक सम्बन्धी सुखों का चिरकाल तक उपभोग कर महारानी के गर्भ में फाल्गुन वदी 8 को अवतरित हुये। द्वितीय तीर्थंकर की तीर्थ परम्परा में जब तीस लाख करोड़ सागर बीत चुके थे तब सम्भवनाथ का जन्म मंगसिर शुक्ला 15, ज्येष्ट नक्षत्र में हुआ था। उस समय इन्द्रों ने इस पुण्य पुरुष के अवतार से सुख–शान्ति की सम्भावना देखकर अभिषेक पूर्वक सम्भवनाथ नाम रखा तथा शुभ लक्षणों के अनुसार अश्व का चिह्न रखा। उनकी आयु 60 लाख पूर्व वर्ष की थी। कुमार अवस्था के 15 लाख पूर्व वर्ष काल प्रमाण बीतने पर पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य प्राप्त किया । 44 लाख 4 पूर्वांग वर्ष तक अभ्युदय सुखों को भोगा । उन्हीं के शरीर की ऊँचाई 400 धनुष–प्रमाण थी। शरीर का वर्ण सुवर्ण सा सुन्दर था।

किसी एक दिन मेघों के विनाश को देख कर एवं जीवन के नश्वरता का चिन्तवन किया और मंगसिर शुक्ला 15 के दिन सहेतुक वन में ज्येष्ठा नक्षत्र के रहते अपराह्न काल में 1000 राजा जनों के साथ तीन दिन के उपवास पूर्वक दीक्षा ली। पश्चात् 14 वर्ष तक कठोर तप कर कार्तिक कृष्ण 5 के दिन ज्येष्ट नक्षत्र में सहेतुक वन में ही अपराह्न काल में केवल ज्ञान को प्राप्त किया । पश्चात् आप चतुर्विध संघ सहित विहार करने लगे । उनके संघ में चारुदत्त आदि 105 गणधर थे, 2 लाख ऋषि में से 2150 पूर्वधर, 129300 शिक्षक, 9600 अवधिज्ञानी, 15 हजार केवली, 198 सौ विक्रियाधारी, 12150 विपुलमति, 12 हजार वादी, 330 हजार धर्मश्री आदि आर्यिकायें थीं, 3 लाख श्रावक, 5 लाख श्राविकायें थीं। इतने विशाल संघ को 11 योजन प्रमाण समवशरण में धर्म की देशना देते थे। वह समवशरण देव निर्मित था, जिसमें शाल वृक्ष (अशोकवृक्ष) आदि अनेकों विभूतियाँ थीं। उसमें त्रिमुख यक्ष, प्रज्ञप्ति यक्षिणी जिन शासन के प्रभावक रक्षक देव थे।

इस प्रकार 1 लाख पूर्व, 4 पूर्वांग 14 वर्ष तक धर्म की देशना देकर सम्मेदशिखरजी में एक माह का योग निरोध कर स्थित रहे और चैत्र शुक्ला 6 के दिन ज्येष्ट नक्षत्र में अपराह्न काल में 1 हजार मुनियों समेत मोक्ष पधारे ।

4. अभिनन्दननाथ तीर्थंकर

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अयोध्या नगरी का स्वामी इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्री वैभव सम्पन्न स्वयंवर नाम के राजा राज्य करते थे। सिद्धार्थी उनकी महारानी का नाम था। उन दोनों के पुण्योदय से अभिनंदनाथ तीर्थंकर का जीव वैशाख वदी 6 को विजय नामक अनुत्तर विमान से अवतरित होकर माता, पिता को अभिनन्दनीय बनाया था। जब माघ शुक्ला 12, पुनर्वसु नक्षत्र में जन्म लिया, तब स्वयं लोक को अभिनन्दनीय बनाया । इसी कारण स्वयं इन्द्र ने उन्हीं के शुभ लक्षणों के अनुसार बन्दर का चिह्न रखते समय उनका नाम 'अभिनन्दननाथ' रखा था। संभवनाथ के पश्चात् दस लाख करोड़ वर्ष बीतने पर चौथे तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुये थे। उन्हीं की आयु 50 लाख पूर्व वर्ष की थी। वे 12-1/2 लाख पूर्व तक कुमार अवस्था सुखोपभोग किये और यौवन अवस्था में पिता से प्रदत्त 39-1/2 लाख पूर्व 8 पूर्वांग काल तक राज्य सम्भाला । उस सातिशय महापुरुष का शरीर सुवर्ण सा सुन्दर 350 धनुष उत्सेध वाला था ।

आयु का अधिकांश भाग बीता, तब एक दिन गन्धर्व –नगर नाश होते हुये देखकर वैराग्य हुआ । लौकान्तिक देवों का नियोग पूर्ण होने पर माघ शुक्ला 12 पुनर्वसु नक्षत्र में उग्रवन में एक हजार जनों के साथ तीन उपवास पूर्वक पूर्वाह्न काल में दीक्षा ली। पश्चात् अठारह वर्ष तक मौन से साधना करते रहे । फलस्वरूप एक दिन अग्रवन में कार्तिक शुक्ला 5 पुनर्वसु नक्षत्र में अपराह्न काल में केवलज्ञान को प्राप्त किया। उन्हीं के चतुर्विध संघ में वज्रचमर को लेकर एक सौ तीन गणधर तीन लाख ऋषि में से 25 सौ पूर्वधर , दो लाख तीस हजार पचास शिक्षक, अठावन सौ अवधिज्ञानी, सोलह हजार केवली, उन्नीस हजार विक्रियाधारी, 21650 विपुलमति, एक हजार वादी, मेरुषेणा को आदि लेकर 3,30 हजार छः सौ आर्यिकाएँ, 3 लाख श्रावक और 5 लाख श्राविकायें थीं । इतने विशाल संघ को 10-1/2 योजन विस्तृत समवशरण में देशना देते थे। यह समवशरण देव निर्मित था । जिसमें सरलवृक्ष (अशोक वृक्ष) ही नहीं और भी अनेकों विभूतियाँ थीं । उन्हीं के यक्षेश्वर और वज्रशृंखला यक्ष, यक्षिणी थी। इस प्रकार अपने 1 लाख पूर्व 8 पूर्वांग 18 वर्ष तक धर्म की प्रभावना करके सम्मेद शिखर पर्वत पर आये और 1 माह का योग निरोध करके वैशाख शुक्ला 7 पुनर्वसु नक्षत्र में पुर्वाह्न काल में एक हजार मुनियों सहित मोक्ष पधारे ।

5. सुमतिनाथ तीर्थंकर

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकुवंशी मेघरथ नामक राजा थे। उनकी महारानी का नाम मंगला था। महारानी ने सोलह स्वप्नों को देखा पश्चात् सुमतिनाथ का जीव जयन्त नामक अनुत्तर विमान सम्बन्धि स्वर्गीय सुखों को भोग कर सावन सुदी 2 को माता मंगला के गर्भ में अवतरित हुये । माता को बिना बाधा दिये वृद्धि को प्राप्त होकर श्रावण शुक्ला 11, मघा नक्षत्र में जन्म लिये। देवों ने अपने नियोग के अनुसार जन्मोत्सव मना कर शुभ लक्षणानुसार चकवा (पक्षी विशेष) का चिह्न और सुमतिनाथ नाम रखा। अभिनन्दनाथ तीर्थंकर मोक्ष जाने के नौ लाख करोड़ सागर बीत जाने पर उनका जन्म हुआ था। उनकी आयु चालीस लाख पूर्व की थी। उनका सुवर्ण–सा शरीर 300 धनुष प्रमाण उन्नत था। कुमार काल के 10 लाख वर्ष पूर्व बीतने पर पिता से प्रदत्त राज्य प्राप्त किया और 29 लाख पूर्व 12 पूर्वांग तक राज्य किया । किसी एक दिन जाति स्मरण से वैराग्य हुआ, जिससे राज्यपाट तो तृण बिन्दु समान नश्वर समझकर वैशाख शुक्ला 9 मघा नक्षत्र में सहेतुक वन में 1 हजार जनों के साथ तीन उपवास पूर्व पूर्वाह्न काल में दीक्षा ली ।

दीक्षा के पश्चात् 20 वर्ष तक घोर तपस्या की और पौष शुक्ला 15, हस्त नक्षत्र में सहेतुक वन में अपराह्न काल में केवल ज्ञान प्राप्त किया । पश्चात् चतुर्विध संघ सहित 1लाख पूर्व, 12 पूर्वांग, 20 वर्ष तक विहार करके धर्म की देशना दी । उनके चतुर्विध संघ में वज्र आदि 116 गणधर, 320 हजार ऋषि में से चौबीस सौ पूर्वधर, दो लाख चौवन हजार तीन सौ पचास शिक्षक, ग्यारह हजार अवधिज्ञानी, तेरह हजार केवली, अठारह हजार चार सौ विक्रियाधारी, दस हजार चार सौ विपुलमति, दस हजार चार सौ पचास वादी, अनंता आदि तीन लाख तीस हजार आर्यिकाएँ, 3 लाख श्रावक 5 लाख श्राविकायें थीं । इतने विशाल संघ को देव निर्मित 10 योजन प्रमाण धर्म सभा (समवशरण) में देशना देते थे, जिसमें प्रियंगु वृक्ष (अशोक वृक्ष) आदे नाना प्रकार के मंगल द्रव्य थे। उनके नुम्बुख और वज्रांकुश यक्ष, यक्षिणी थी। जो कि अपने नियोग को पूरा करते थे। इस प्रकार धर्म तीर्थ का प्रवर्तन करके सम्मेदाचल पर आये। वहाँ 1 माह योग निरोध करके चैत्र शुक्ला 10 मघा नक्षत्र में पूर्वाह्न काल में 1 हजार अन्य मुनियों सहित मोक्ष पधारे।

6. पद्मप्रभुनाथ तीर्थंकर

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में कौशाम्बी नगरी में इक्ष्वाकुवंशी काश्यप गोत्री धरण नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी सुसीमा नाम की रानी थी। उन दोनों के सुकर्म से पद्मप्रभुतीर्थंकर का जीव उपरिम ग्रैवेयक के सुखों को भोगकर माता सुसीमा के गर्भ में माघ वदी 6 को आया। काल क्रम से वृद्धि को प्राप्त होकर आसोज कृष्ण 13, चित्रा नक्षत्र में जन्म लिया। देवों ने तत्सम्बन्धि उत्सव मनाकर शुभ लक्षणानुसार पद्म (कमल) का चिह्न और पद्मप्रभुनाथ नाम रखा। उनका जन्म सुमति नाथ तीर्थंकर के मोक्ष जाने के 10 हजार करोड़ सागर बीत जाने पर हुआ था। उनकी आयु 30 लाख पूर्व की थी। कुमार काल के साढ़े छः लाख वर्ष पूर्व बीतने पर, पिता से प्राप्त राज्य का साढ़े इक्कीस लाख पूर्व 16 पूर्वांग काल प्रमाण भोग किया था। उनका शरीर विद्रुम सा वर्णवाला 250 धनुष्य प्रमाण था।

इस प्रकार सुखोपभोग 21-1/2 लाख पूर्व 16 पूर्वांग तक बीतने पर एक दिन पूर्वभव के जाति स्मरण ज्ञान से संसार की क्षणिकता को जानकर वैराग्य हुआ। लौकान्तिक देवों के उत्साह को पाकर कार्तिक कृष्ण 13, चित्रा नक्षत्र में 1000 जनों के साथ मनोहर वन में तीन भक्त (एक उपवास) पूर्वक अपराह्न काल में दीक्षा ली। घोर तप कर मात्र 6 मास में ही मनोहर वन में ही वैशाख शुक्ला 10, चित्रा नक्षत्र के रहते अपराह्न काल में केवलज्ञान प्राप्त किया। पश्चात् अपने चतुर्विध संघ सहित विहार किया। उनके संघ में चमर आदि 111 गणधर, 330000 ऋषि में से 2300 पूर्वधर, 269000 शिक्षक, 10000 अवधिज्ञानी, 12000 केवली, 16800 विक्रियाधारी, 10300 विपुलमती, 9600 वादी रतिषेणा आदि 420000 आर्यिकायें, 300000 श्रावक 500000 श्राविकायें थीं। इतने विशाल संघ को 9-1/2 योजन प्रमाण विस्तृत समवशरण में 1 लाख पूर्व, 16 पूर्वांग 6 माह काल तक धर्म की देशना दी। उनके समवशरण में मानक, यक्ष, अप्रतिचक्रेश्वरी यक्षिणी, प्रियंगु वृक्ष (अशोक वृक्ष) जैसी अनेकों विशेषताएँ थीं।

इस प्रकार भगवान विहार करते हुए सम्मेदाचल पर आए और एक माह का योग निरोध पर फाल्गुन कृष्ण 4, चित्रा नक्षत्र के अपराह्न काल में 324 मुनियों के साथ मोक्ष पधारें।

7. सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में काशी देश में बनारस नगर था। उसमें इक्ष्वाकुवंशी सुप्रतिष्ट राजा राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम पृथिवीषेणा था। उन दोनों के पुण्योदय से सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर का जीव मध्य ग्रैवेयक के सुखों को भोगकर भदवा वदी दो को महारानी पृथवीषेणा के गर्भ में आया। काल क्रम से वृद्धि को प्राप्त होकर ज्येष्ट शुक्ला बारह विशाखा नक्षत्र में जन्म लिया। उन्होंने पद्मप्रभु तीर्थंकर के मोक्ष जाने के पश्चात् नौ हजार करोड़ सागर वर्ष बाद जन्म लिया था। उनकी आयु बीस लाख वर्ष पूर्व की थी। कुमार काल के पाँच लाख पूर्व वर्ष बिता कर यौवन अवस्था में पिता द्वारा प्रदत्त राज्य प्राप्त किया। उनका हरित वर्ण-सा शरीर दो सौ धनुष्य प्रमाण था।

इस प्रकार चौदह लाख पूर्व 20 पूर्वांग वर्ष तक राज्य करने के बाद एक दिन बसन्त ऋतु की सुन्दरता की क्षणिकता को देखकर वैरागी हुये और ज्येष्ट शुक्ला बारह वैशाख नक्षत्र में सहेतुक वन में एक हजार जनों के साथ तृतीयभक्त (एक उपवास) पूर्वक पूर्वाह्न काल में दीक्षा लेकर नौ वर्ष तक घोर तपस्या करते हुये सहेतुक वन में गये और फाल्गुन कृष्णा छट्ट विशाख नक्षत्र में केवलज्ञान को प्राप्त किया। पश्चात् संसार में बढ़े मिथ्या धर्म का मर्दन करते हुए चतुर्विध संघ के साथ विहार किया। उनके चतुर्विध संघ में बलदत्त आदि पिचानवे गणधर, तीन लाख ऋषि में से 2030 पूर्वधर, 244920 शिक्षक, नौ हजार अवधिज्ञानी, 11 हजार केवली, 15300 विक्रियाधारी, 6150 विपुलमति, 86 सौ वादी, 3 लाख 30 हजार मीना आदि आर्यिका, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें थीं। उन्होंने एक लाख पूर्व 20 पूर्वांग नौ वर्ष तक नौ यौजन प्रमाण विस्तृत समवशरण में धर्म देशना दी। इस धर्म सभा की शिरिष (अशोक वृक्ष), विजय यक्ष, पुरुषदत्ता यक्षिणी जैसी अनेकों विशेषतायें थीं।

इस प्रकार भगवान् विहार करते हुए सम्मेदाचल पर गये और एक माह का योग निरोध कर फाल्गुन कृष्ण छट्ट, अनुराधा नक्षत्र में पूर्वाह्न काल में पाँच सौ मुनियों के साथ मोक्ष पधारे।

8. चन्द्रप्रभु तीर्थंकर

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में चन्द्रपुर नगर में इक्ष्वाकुवंशी काश्यप गोत्री वैभव सम्पन्न महासेन राजा राज्य करते थे। उनकी महारानी का नाम सुलक्षणा था। जो कि पति के पद –चिह्नों पर चलते हुए नारी समाज की अग्रणी थी। उन दोनों के पुण्योदय से वैजयन्त नामक अनुत्तर के स्वर्गीय सुखों को भोगकर चन्द्रप्रभा का जीव महारानी सुलक्षणा के गर्भ में चैत्र वदी पंचमी को आया। काल क्रम से वृद्धिगत होकर पौष कृष्ण ग्यारह, अनुराधा नक्षत्र में जन्म लिया। देवों ने उस सम्बन्धी अपना नियोग पूरा कर उनके अर्द्ध चन्द्र चिह्न इस शुभ लक्षण के अनुसार चन्द्रप्रभु नाम रखा। वे सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर के मोक्ष जाने के नौ सौ करोड़ सागर वर्ष बीतने पर अवतरित हुए थे। उनकी आयु दस लाख पूर्व वर्ष थी। अपनी कुमार अवस्था के 2 1½ लाख पूर्व वर्ष बीतने पर अपने पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य का 9½लाख पूर्व 24 पूर्वांग वर्ष प्रमाण काल तक उपभोग किया। उनका शुक्ल वर्ण–का शरीर 150 धनुष प्रमाण उन्नत था। इस प्रकार अपने पूर्व कृत पुण्योदय से सुखों का उपभोग किया।

किसी एक दिन अध्रुव (अनित्यादि) आदि भावनाओं का चिन्तन करते हुए वैरागी हुए। तब सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर पौष कृष्ण ग्यारह, अनुराधा नक्षत्र में सर्वार्थ नामक वन में जाकर एक हजार राजा जनों के साथ अपराह्न काल में तीन उपवास पूर्वक दीक्षा ली। अपने तपस्या के तीन महाकाल में कठोर उपसर्ग परिषहों को सहन कर फाल्गुन कृष्ण छह के दिन सर्वार्थ वन में ही अनुराधा नक्षत्र के रहते घातियाँ कर्मों का क्षय कर केवली हुए। उन्होंने अपने सातिशय तीर्थंकर प्रकृति से तीर्थ का प्रवर्तन किया। उन्हीं के चतुर्विध संघ में वैदर्भ आदि 93 गणधर, 250000 ऋषि में से 4000 पूर्वधर, 210400 शिक्षक, 2 हजार अवधिज्ञानी, 18 हजार केवली, छः सौ विक्रियाधारी, 8 हजार विपुलमति, 7 सौ वादी, 3 लाख अस्सी हजार वरूणा आदि आर्यिका, तीन लाख श्रावक, पाँच लाख श्राविकायें थीं। इतने विशालसंघ को देवों द्वारा निर्मित 8½ योजन प्रमाण विस्तृत समवशरण में धर्म देशना देते थे। जिसमें नाग वृक्ष (अशोक वृक्ष) अजित यक्ष, मनोवेगा यक्षिणी ही नहीं थी किन्तु अनेक विशेषतायें थीं।

इस प्रकार धर्म की देशना एक लाख पूर्व, 24 पूर्वांग, तीन मास तक देकर सम्मेदाचल पर आये और एक माह का योग निरोध कर भाद्रपद शुक्ला 6, जेष्ठा नक्षत्र के रहते एक हजार मुनियों सहित पूर्वाह्न काल में मोक्ष पधारे।

9. पुष्पदन्तजी

भारत वर्ष के काकंदीपुर नगर में इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीव राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानी जय रामा थी। रानी ने फाल्गुन वदी दूज के दिन रात्रि के अन्तिम पहर में देवों के द्वारा रत्नवृष्टि आदि के साथ सोलह स्वप्न देखे। आरण स्वर्ग से उनके गर्भ में एक महापुरुष ने अवतार लिया। जिनका जन्म मार्ग शीर्ष शुक्ल प्रतिपदा के मूल नक्षत्र में हुआ। जन्म के बाद इन्द्रों ने देवों के साथ उन्हें सुमेरू पर्वत पर ले जाकर क्षीर सागर के जल वाले 1008 कलशों से अभिषेक किया। और उनका नाम "पुष्पदन्त" रखा। इनका दूसरा नाम सुविधिनाथ भी है। इनका चिह्न मगर का था। उनकी पूर्ण आयु दो लाख पूर्व थी। शरीर की ऊँचाई सौ (100) धनुष और शरीर श्याम वर्ण का था। उन्होंने पचास हजार वर्ष पूर्व तक कुमार अवस्था के सुख प्राप्त किया था राज्यकाल करते हुए जब पचास हजार वर्षपूर्व और 28 पूर्वांग बीत गए थे तब एक दिन दिशाओं का अवलोकन कर रहे थे। तब उल्कापात को देखकर विचार करते हैं कि आश्चर्य है इस संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। जल के बुदबुदे के समान, इन्द्र जाल के समान जीवन क्षण भँगुर है। मात्र यह आत्मा अनिश्वर है, उसकी अजर –अमरता का उपाय करना चाहिए। इसी प्रकार वैराग्य पूर्ण भावों का विचार करते हुए ही स्वर्ग से लौकान्तिक देवों का आगमन हुआ। पौष शुक्ल ग्यारस के अनुराधा नक्षत्र की अपराह्न बेला के शुभ दिन में पुष्प नामक वन में जाकर स्वयं ही पंचमुष्टि केशलोंच कर दिगम्बर रूप धारण कर तीन दिन का उपवास धारण किया। उपवास का पारणा शैलपुर नगर के पुष्पमित्र राजा के घर हुआ। इनके साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी। मौन होकर चार वर्ष तक आत्म–साधना करने के बाद कार्तिक शुक्ल तीज के दिन उन्हें विश्व के समस्त पदार्थों को एक साथ जानने वाला अपराह्न काल में पुष्पवन में मूल नक्षत्र में बहेरा वृक्ष के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलज्ञान होने के बाद देवों के द्वारा 8 योजन परिमित समोवशरण की रचना की गई। जिसमें ब्रह्म यक्ष और काली यक्षिणी जिनशासन देव और देवियाँ थीं। एक लाख पूर्व 28 पूर्वांग अधिक चार माह तक उनकी दिव्य ध्वनि खिरी। इस दिव्य ध्वनि को (ग्रहण करने वाला) झेलने वाले अठासी(88) गणधर थे। जिसमें मुख्य गणधर नाग थे। इस धर्मसभा

में दो लाख ऋषि थे जिनमें से 500 पूर्वधर, 155500 शिक्षक, 8400 अवधिज्ञानी, 7500 केवली, तेरह हजार विक्रियाधारी, 75 सौ विपुलमति, 66सौ वादी, 3 लाख 80 हजार आर्यिकायें थीं। जिसमें मुख्य आर्यिका गणिनी घोषा थी। दो लाख श्रावक चार लाख श्राविकायें थीं । अश्विनी शुक्ल अष्टमी के मूलनक्षत्र में अपराह्न में सम्मेदशिखर से उनकी आत्मा इस नश्वर शरीर को छोड़कर लोक के अग्रभाग में जाकर विराजमान हो गई और उनका अब इस धरती पर पुनः आगमन नहीं होने वाला है ।

10. शीतलनाथ

भरतक्षेत्र के भद्रिलपुर नगर में राजा दृढ़रथ राज्य करते थे। उनकी रानी नन्दा थी। अच्युत स्वर्ग से चैत्र वदी अष्टमी के दिन रानी के गर्भ में एक महान् पुरूष का अवतार हुआ । इस इक्ष्वाकुवंश में नौ माह पश्चात् जन्म के दस अतिशयों के साथ माघ पूर्वाषाढ़ कृ. 12 के नक्षत्र में एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई । देवों द्वारा "शीतलनाथ" नाम रखा गया । उनका चिह्न स्वास्तिक का था। उनकी पूर्ण आयु 9 लाख पूर्व की थी। शरीर की ऊँचाई 90 धनुष्य और सुवर्णमयी शरीर था। 25 हजार वर्ष कुमार काल व्यतीत कर 150 हजार वर्ष पूर्व तक राज्य किया । एक दिन हिमनाश का दृश्य देखकर विचार करने लगे कि संसार में प्रत्येक वस्तुक्षण – क्षण में नाश होने वाली है । प्राणी अपने कर्मों के सुख–दुःख का फल स्वयं भोगता है । सुख–दुःख रूपी सघन वन से निकलने के लिए संयम ही एक मार्ग है । इस तरह संयम ग्रहण करने की वैराग्य भावनापूर्ण होते ही लौकान्तिक देवों ने आकर स्तुति की । देवों ने और मनुष्यों ने मिलकर सहेतुक वन में माघ कृष्ण 12 को मूल नक्षत्र में पूर्वाह्न वेला में दीक्षा कल्याण मनाया । उन्होंने उस दिन तीन दिन के उपवास का नियम लिया । इनके साथ एक हजार राजाओं ने दीक्षा ली । तीन वर्ष तक आत्म ध्यान करने के पश्चात सहेतुक वन में पौष कृ. 14 के अपराह्न बेला में पूर्वाषाढ नक्षत्र में समस्त त्रिकालवर्ती चर–अचर पदार्थों को जानने वाला केवलज्ञान सम्मेदशिखर में कार्तिक शुक्ल 5 की पूर्वाषाढ नक्षत्र की पूर्वाह्न बेला में धूलि पलाश वृक्ष के नीचे प्राप्त किया । केवलज्ञान होने के बाद 7½ योजन प्रमाण

वाले समवशरण की रचना देवों द्वारा की गई । नियोगी यक्ष ब्रह्मेश्वर जिनशासन देव और यक्षिणी ज्वाला मालिनी जिनशासन देवी भक्ति कर रहे थे। 25 हजार पूर्व वर्ष तक केवलज्ञान की दिव्य ध्वनि का लाभ देव, देवियाँ, मनुष्य और तिर्यंचों को मिलता रहा । उसमें 87 गणधरों में कुंथु मुख्य गणधर थे । इनके साथ 3 लाख 80 हजार आर्यिकाएँ थीं, उनमें मुख्य धारणा थीं। ऋषि एक लाख थे, जिनमें से चौदह सौ पूर्वधारी, 72 सौ अवधिज्ञानी, 59200 शिक्षक, सात हजार केवली, बारह हजार विक्रियाधारी, 75सौ विपुलमति, 57सौ वादी थे। नौ माह तक उन्होंने मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को निग्रह करने के बाद कार्तिक शुक्ला को एक हजार ऋषि मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया ।

11. श्रेयांसनाथ जी

ग्यारहवें तीर्थंकर भगवान श्रेयांसनाथजी का जन्म सिंहपुर नगर के इक्ष्वाकुवंशी राजा विष्णु की रानी वेणुदेवी के गर्भ से हुआ था। गर्भ में आने के पहले 6 माह तक और गर्भ के 9 माह तक इस तरह 15 माह तक देवों ने रत्नवृष्टि की थी। पुष्पोत्तर स्वर्ग से च्युत होकर श्रेयांसनाथ का जीव गर्भ में आने से जेठ वदी अष्टमी का दिन धन्य– सा हो गया । फाल्गुन शुक्ल ग्यारस के श्रवण नक्षत्र में इनका जन्म हुआ। 84 लाख वर्ष पूर्ण आयु प्राप्त कर 21 लाख वर्ष तक कुमार अवस्था में व्यतीत किया । 80 धनुष प्रमाण उनके शरीर की ऊँचाई और सुवर्णमय शरीर प्राप्त किया । इनका चिह्न गैंडा था। 42 लाख वर्ष तक राज्य किया । जिसमें नाना प्रकार की धन सम्पत्ति वैभव का उपभोग करते हुए एक दिन प्रकृति की सौंदर्यता में परिवर्तन देखा और सोचा अरे ! अब तक प्रकृति का दृश्य कितना मनोहरकारी था चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिख रही थी। और आज ये पेड़ –पौधों में कैसी उदासीनता दिख रही है । समय आने पर हर मानव की इसी तरह जीवन लीला समाप्त हो जायेगी। तो क्या, मेरा यह राज्य भार भी एक दिन समाप्त हो जायेगा ? अर्थात् मुझसे अलग हो जायेगा। इस तरह आत्मा और शरीर का अलग–अलग भेदज्ञान का विचार करते हैं । स्वर्ग से देवों ने आकर भक्ति भाव से पूजा वंदना की । मनोहर वन में जाकर फाल्गुन कृष्ण की ग्यारस को श्रवण नक्षत्र में

पूर्वाह्न काल में 3 भक्त (एक उपवास) का नियम लेकर दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा लेने के बाद परम पद को प्राप्त करने के लिये 2 वर्ष तक कठोर आत्मसाधना की, और उसी मनोहर वन में श्रवण नक्षत्र की अपराह्न बेला में तेंदु के वृक्ष के नीचे अपने लक्ष्य को प्राप्त होने वाला केवलज्ञान प्राप्त किया । केवलज्ञान प्राप्त होते ही देवों ने 7 योजन प्रमाण समोशरण बनाया । जिसमें प्रभु ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का उपदेश देते हुये 2099998 वर्ष व्यतीत किये । इस उपदेश को ग्रहण करने वाले 77 गणधरों में 'धर्म' गणधर मुख्य थे। चतुर्विध संघ में से84000 ऋषि में से 1300 पूर्वधारी, 48200 शिक्षक, 6000 अवधि ज्ञानी, 6500 केवली, 11000 विक्रियाधारी, 6000 विपुलमती, 5000 वादी और 130000 आर्यिका में गणिनी धारणा थी, 200000 श्रावक, 400000 श्राविकायें थीं । एक माह तक योग निरोध करने के बाद कार्तिक शुक्ल पंचमी की घनिष्ठा नक्षत्र को पूर्वाह्न बेला में सम्मेदशिखर से मोक्ष पद की प्राप्ति की। इनके साथ 1000 ऋषियों ने भी मोक्ष पद को प्राप्त किया जो हमारे जीवन का भी लक्ष्य होना चाहिये ।

12. वासपूज्य जी

प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ से 11वें श्रेयांसनाथ तीर्थंकर तक तीर्थंकरों ने राज्य का सुख भोगकर फिर दीक्षा धारण कर परम धाम निर्वाण को पाया था। परन्तु बारहवें तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी थे जिनका जन्म चम्पापुर के राजा वासुपूज्य की रानी विजया के गर्भ से हुआ था। वे इक्ष्वाकुवंशी थे। महाशुक्र स्वर्ग से च्युत होकर आषाढ़ वदी 6 को वे गर्भ में आए थे। माता ने बड़े ही हर्ष और आनन्द के साथ फाल्गुन शुक्ल चौदस के विशाखा नक्षत्र में पुत्र को जन्म दिया । देवों ने इनका ''वासपूज्य'' नाम रखा । इनका चिह्न 'भैंसा' था। जन्मोत्सव देवों द्वारा बड़े ही भक्ति पूर्वक अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन और विक्रिया पूर्वक दिखाते हुए मनाया गया था। इन्होंने पूर्ण जीवन काल 72 लाख वर्ष का प्राप्त किया जिसमें 18 लाख वर्ष तक माता-पिता के लाड प्यार में कुमार काल व्यतीत किया। इनकी शरीर ऊँचाई 70 धनुष और वर्ण विद्रुम मय था। राज का भार ग्रहण करने से पहले ही

पूर्व भव का जाति स्मरण होने से वैराग्य उत्पन्न हो गया । वैराग्य की भावना उत्पन्न होते ही जैसा कि नियोग है लौकान्तिक देव दीक्षा कल्याण मानते हैं, वैसे ही वे आकर दीक्षा की अनुमोदना करने लगे । मनोहर वन में जाकर फाल्गुन कृष्ण चौदस को विशाखा नक्षत्र की अपराह्न बेला में स्वयं दीक्षा ग्रहण कर एक दिन का उपवास किया । इनके साथ 676 व्यक्तियों ने दीक्षा ग्रहण की थी। एक वर्ष तक मौन रहकर आत्म ध्यान किया । इसके पश्चात् मनोहर वन में माघ शुक्ल द्वादशी को विशाखा नक्षत्र के अपराह्न बेला में त्रिकाल सम्बन्धी जगत् के समस्त पदार्थों को जानने वाले केवलज्ञान को पाटल वृक्ष के नीचे प्राप्त किया था। देवों ने आकर 6½ योजन विस्तार वाले समोशरण की रचना की । जिसकी जिन शासन देव, देवी षण्मुख यक्ष व गौरी यक्षिणी थी। समोशरण में 1099999 वर्ष तक उपदेश दिया, यही इनका केवली काल था। यहाँ पर सबसे अधिक 106000 आर्यिकाओं में मुख्य वरसेना थी। 200000 श्रावक, 400000 श्राविकायें थीं । उपदेश को झोलने वले 66 गणधरों में मन्दर गणधर मुख्य थे। 72000 ऋषि में से 1200 पूर्वधारी, 39200 शिक्षक, 5400 अवधिज्ञानी, 6000 केवली, 10000 विक्रियाधारी, 6000 विपुलमति, 4200 वादी थे। एक माह तक योग निरोध करने के बाद भाद्रपद शुक्ल चौदस को पाटल वृक्ष के नीचे अश्विनी नक्षत्र के अपराह्न काल में सम्मेदशिखर में 601 ऋषियों के साथ मुक्ति रूपी लक्ष्मी से पाणिग्रहण किया ।

13. विमलनाथजी

शतार स्वर्ग से च्युत हुआ विमलनाथप्रभु का जीव देव कपिलापुरी इक्ष्वाकुवंशी राजा कृतवर्मा की रानी जयश्यामा के गर्भ में जेठ वदी दसवीं को प्रभु गर्भ में आये । माघ शुक्ला चौदस की पूर्व भाद्रपद नक्षत्र में गर्भस्थ बालक का जन्म हुआ । देवों द्वारा 'विमल' नाम रखा गया । वे जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि तीन सुज्ञान के धारी थे। इन्होंने 60 लाख वर्ष की आयु में से 15 लाख वर्ष कुमारावस्था के सुखों में व्यतीत की। इनका चिह्न 'शूकर' था। इनके शरीर की लम्बाई 60 धनुष के समान और शरीर का वर्ण सुवर्णमय था। कुमार काल बीतने के बाद पिता के

राजपाट का कार्य 30 लाख वर्ष सम्हाला । राज वैभव का सुख भोगते हुये मेघनाश का दृश्य देखते ही उन्हें भी राज वैभव का भोग नाशवान जानकर वैराग्य उत्पन्न हुआ । इस पुण्य का लाभ लेने के लिए लोकान्तिक देवों का स्वर्ग से आगमन हुआ। राजा विमलनाथ ने सहेतुक वन में माघ शुक्ला चौदस के उत्तराभाद्र पद के अपराह्न में तीन दिन का उपवास लेकर स्वयं दिगम्बर दीक्षा ग्रहण की । तभी मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ। इस तरह चार ज्ञान के धारी हुये और उनके साथ 676 राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की । दीक्षा लेने के बाद विमलनाथ मुनि ने इस अन्तरात्मा को परमात्मा बनाने के लिये तीन वर्ष तक कठोर आत्म साधना की । उन्होंने इस तपस्या से सहेतुक वन में माघ शुक्ला दूज की उत्तराषाढ़ नक्षत्र में जम्बू वृक्ष के नीचे अपराह्न काल में चार घातियाँ कर्मों का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया । शीघ्र ही देवों ने आकर छः योजन परिमित समोवशरण की रचना की । जिसमें प्रभु गंधकुटी के ऊपर सिंहासन पर चार अंगुल ऊपर आकाश में विराजमान थे। अतिशय से युक्त उनका मुख चारों दिशाओं में दिखाई पड़ता था । पाताल देव और गांधारी देवी जिनशासन यक्ष और यक्षिणी थी। उनकी इस धर्मसभा में जय को मुख्य कर 55 गणधर थे । 1100 पूर्वधारी, 38500 पाठक, 4800 अवधिज्ञानी, 5500 केवली, 9000 विक्रियाधारी, 3600 वादी, 5500 विपुलमती, इस तरह 68000 ऋषि, पद्मा आदि 103000 आर्यिका 2 लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें थी। सभी भगवान् के पूजा भक्ति और उपदेश में रत रहते थे। इस तरह 1499998 वर्ष तक केवली रहे । आयु का एक माह रहने पर योग निरोध किया । इन्होंने सम्मेद शिखर से आषाढ़ कृष्णा अष्टमी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में प्रदोष (संध्या) काल में मोक्ष पद को प्राप्त किया । यह अष्टमी आज भी कालाष्टमी के नाम से पूजी जाती है इनके साथ 600 ऋषि मोक्ष गये थे।

14. अनन्तनाथजी

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के मध्य अयोध्या नामक एक महानगरी है । वहाँ के इक्ष्वाकुवंशी राजा सिंहसेना और रानी सर्वयशा थीं । पुष्पोत्तर स्वर्ग से च्युत होकर कार्तिक वदी प्रतिपदा को रानी के गर्भ में एक महान् पुण्यशाली महान् पुरुष का

अवतार हुआ । नव मास पूर्ण होने पर उस पुण्यवान का जन्म ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी को रेवती नक्षत्र में हुआ । इनका चिह्न 'सेही' था। देवों ने उनका नाम अनन्तनाथ रखा। इनकी पूर्ण आयु 30 लाख वर्ष की थी। जिसमें 6½ लाखवर्ष कुमारकाल में बिताये । इनके शरीर की ऊँचाई 50 धनुष प्रमाण थी, और शरीर का वर्ण सुवर्णमय था। कुमार काल व्यतीत होने पर राज्य का भार 15 लाख वर्ष तक संभाला । राज काज करते हुए उल्कापात का दृश्य देखकर ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी को रेवती नक्षत्र की अपराह्न बेला में एक दिन के उपवास के साथ सहेतुक वन में भव बन्धन से मुक्ति दिलाने वाली दीक्षा धारण की, इनके साथ 1000 राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण की । आत्मविशुद्धि करने के लिये 3 वर्ष तक कठोर अंतरंग और बहिरंग तप किया । विशुद्धि बढ़ते-बढ़ते पौष शुक्ल दसवीं को रेवती नक्षत्र में सहेतुक वन में पीपल वृक्ष के नीचे अपराह्न काल में केवलज्ञान प्राप्त किया । केवलज्ञानी के धर्म श्रवण के लिये 5½ योजन विस्तार वाली धर्मसभा की रचना देवों द्वारा की गई थी। इनके भक्तिपूर्वक जिनशासन यक्ष-यक्षिणी किन्नर और घेरोठी पूजा स्तवन करते थे। धर्मसभा के जीवों को धर्म का विस्तार से स्वरूप समझाते हुए 74998 वर्ष व्यतीत हो गए । इस धर्मसभा में जय को आदि लेकर 50 गणधर थे। पूर्वधारी 1000, पाठक 39500, अवधिज्ञानी 4300, केवली 5000, विक्रियाधारी 8000, विपुलमती 5000, वादी 3200 । इस तरह ऋषि की संख्या 66 हजार और सर्व श्री मुख्य आर्यिका के साथ 108000 आर्यिका दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें इस विशाल संघ में थे। इनके सिवाय असंख्यात देव और देवियाँ तथा तिर्यंच भी यहाँ थे। देश-विदेशों में पुण्यवान जीवों को धर्म लाभ देते हुए आयु के एक माह शेष रहने पर सम्मेद शिखर में जाकर योग निरोध कर ध्यानारूढ़ हो गए, और शेष समस्त कर्मों को नष्ट करके चैत्र कृष्णा अमावस्या को रेवती नक्षत्र में प्रदोष (संध्या) काल में मोक्ष प्राप्त किया । इनके साथ 7000 ऋषियों ने भी मोक्ष की प्राप्ति की। इस तरह ये 14 वें अनन्तनाथ तीर्थंकर ने आत्मा की अनन्त, अक्षय सोयी हुई शक्ति को तप के माध्यम से जाग्रत कर परम पद को पाया । हर मानव में यह शक्ति है, वह भी इस पद को प्राप्त कर सकता है ।

15. धर्मनाथ जी

संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिए तीर्थंकरों ने ही धर्म तीर्थ का प्रचार-प्रसार किया । अपने चरित्र के माध्यम से जगत को सदाचार का पाठ पढ़ाया। आर्यखंड के रत्नपुर राज्य में राजा भानु की रानी सुव्रता के गर्भ में पुण्योदय से वैशाख सुदी 8 के दिन स्वार्थसिद्धि से एक पुण्यशाली बालक का अवतरण हुआ। गर्भ में आते ही चारों ओर हर्ष की लहर दौड़ गई । गर्भ में बिना कष्ट और बिना दुःख के वृद्धि हो रही थी। एक माह पश्चात् ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशी को पुष्य नक्षत्र में तीन ज्ञान के धारी बालक का जन्म हुआ । इनका चिह्न वज्र था। जन्म होते ही शची ने माता को मायामयी निद्रा में सुलाकर इन्द्र के साथ बालक को सुमेरू पर्वत पर ले जाकर अभिषेक किया, वस्त्राभूषण पहनाए और ''धर्मनाथ'' नाम रखा। और पुनः माता के पास लाकर छोड़ दिया। सारे नगरवासी और बन्धु वर्ग ने जन्मोत्सव मनाया । इनकी आयु दस लाख वर्ष की थी जिसमें 2½लाख वर्ष तक कुमार अवस्था की और यह समय बाल-लीलाओं में बिताया और यौवन अवस्था होने पर राज्य का भार 5 लाख वर्ष तक सम्हाला । इनके शरीर की ऊँचाई 46 धनुष के समान थी और वर्ण सुवर्णमय था। पंचेन्द्रियों के भोगों में आपादकण्ठ में डूबे हुये राजा उल्कापात का दृश्य देखकर संसार-शरीर और भोगों से उदासीन हो गए। वैराग्य पूर्ण भावना करने लगे । स्वर्ग से लौकान्तिक देव आए । स्तुति कर पुनः स्वर्गलोक चले गए । धर्मनाथ राजा ने शाली वन की ओर गमन किया, वहाँ जाकर भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी को पुष्य नक्षत्र की अपराह्न बेला में स्वयं पंचमुष्ठि केशलोंच कर दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेते ही मनः पर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ। दीक्षा के बाद एक उपवास का नियम लिया । उनके साथ 1000 राजाओं ने दीक्षा ली। दो माह तक कठोर आत्मसाधना के बाद सहेतुक वन में दधिपर्ण वृक्ष के नीचे चैत्र कृष्ण अमावस्या के दिन पुष्य नक्षत्र में अपराह्न काल में केवल ज्ञान हुआ । केवलज्ञान होने के बाद देवों ने आकर 5 योजन व्यास वाले समोशरण की रचना की । जिसमें भक्ति भाव करने वाले किम्पुरुष यक्ष और अनन्तमती यक्षिणी जिन शासन देव-देवी थी। इस समोशरण सभा को भगवान् द्वारा 249999 वर्ष तक सम्बोधित किया गया जिसमें अरिष्ट को मुख्य लेकर 43 गणधर थे। कुल मिलाकर 66000 ऋषि

थे। उनमें से 1000 पूर्वधारी, 39500 शिक्षक, 4300 अवधिज्ञानी, 5000 केवली, 7000 विक्रियाधारी, 4500 विपुलमती, 2800 वादी, 62400 आर्यिकायें थी। आर्यिका में सुव्रता आर्यिका मुख्य थी। आयु के अन्त में भगवान धर्मनाथजी सम्मेद शिखर से ज्येष्ट शुक्ला चतुर्थी के दिन पुष्य नक्षत्र में मोक्ष लाभ किया।

16. शान्तिनाथ भगवान्

आइये, अब हम उन भगवान् का आपको परिचय बतलाते हैं जो तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा कामदेव आदि तीन पदवीधारी थे। धन्य है उनकी महिमा क्योंकि उन्होंने पुण्यसंचय करते-करते इतना पुण्य संचय कर लिया जिससे उन्हें एक साथ तीन पदवियाँ प्राप्त हुई । कितना पुरुषार्थ किया होगा उन्होंने। इस भरतक्षेत्र के जम्बूद्वीप में भारतवर्ष है उस भारत के हस्तिनापुर नगर में विश्व सेन राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम एरादेवी था। पुण्योदय से उनको गर्भ में पुण्यशाली महापुरुष सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर भादवा वदी सप्तमी के दिन आकर उस माता को व इस धरा को धन्य करते हुए भरणी नक्षत्र में ज्येष्ट शुक्ला बारस को जन्म लेकर उन्होंने सारे जग को शान्ति प्रदान की । यहाँ तक कि नारकियों को भी कुछ क्षण के लिए शान्ति प्राप्त हुई । वे इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय थे। इनकी पूर्ण आयु एक लाख वर्ष की थी। इन्होंने पच्चीस हजार वर्ष बाल्यकाल में बिताया । वे 40 धनुष लम्बे स्वर्ण के समान वर्ण वाले तीन लोक की सुन्दरता को जीतने वाले होने से उन्होंने कामदेव की पदवी प्राप्त की थी। षट्खण्ड के अधिपति उन्होंने छः खण्डों के राज्य को जीता था इस कारण उन्हें चक्रवर्ती पद प्राप्त होने के बाद ½ लाख वर्ष तक राज्य सुख का आनन्द लेने के बाद, एक दिन अचानक जातिस्मरण से उस राज्य के सुख से भी विरक्ति हो गई । उन्होंने उन सब सांसारिक सुखों को अस्थायी समझ कर भरणी नक्षत्र में ज्येष्ट कृष्णा चतुर्थी को एक हजार राजाओं के साथ आम्रवन में दिगम्बर दीक्षा धारण की और तीन उपवास भी किए । उनके दीक्षा-कल्याण की लौकान्तिक देवों ने आकर अनुमोदना की और देवों ने भी बहुत जोर -शोर से दीक्षोत्सव मनाया और भावना की 'हे भगवान्' एक दिन हम भी आप जैसे बनें।

भगवान् 16 वर्ष तक मुनि अवस्था में रहकर कठिन तपश्चरण करने के पश्चात् आम्रवन में नन्दी वृक्ष के नीचे अपराह्न काल में भरणी नक्षत्र में पौष शुक्ल ग्यारस के शुभ दिन केवलज्ञान रूपी सूर्य से सारे जगत् को प्रकाशमान करते हुए समवशरण में विराजमान हुए । वह समवशरण 4½ योजन परिमित था। भगवान् की सेवा में तत्पर रहने वाले यक्ष का नाम गरूड देव व यक्षिणी का नाम मानसी था। उनके समवशरण में चक्रायुध आदि 36 गणधर, 62000 मुनिगण में से पूर्वधर 800, शिक्षक 41800, अवधि ज्ञानी 3 हजार, केवली 4 हजार विक्रियाधारी 6 हजार, विपुलमति 4 हजार, वादी 24 सौ और मुख्य आर्यिका हरिषणा माता जी आदि 60 हजार 3 सौ आर्यिकाएँ तथा 2 लाख श्रावक, 4 लाख श्राविकाएँ थीं । अब आप ही सोचे कि कितने बड़े चतुर्विध संघ के साथ 24984 वर्ष बिहार करते हुए, पुण्यवान जीवों को उपदेश देकर भगवान् ने उनके जीवन को कृतार्थ किया । एक मास पूर्व योग निवृत्ति के पश्चात् सम्मेद शिखर से 9 सौ मुनियों के साथ प्रदोष काल में भरणी नक्षत्र में मुक्तिरमा का वरण किया अर्थात् उन्होंने मोक्ष प्राप्त किया ।

17. कुन्थुनाथ जी

कुन्थुनाथ भगवान् भी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव तीन पद के धारी थे। भरतक्षेत्र के जम्बूद्वीप में भारतवर्ष के हस्तिनापुर नगर में सूर्यसेन राजा राज्य करते थे। उनकी रानी श्रीमती के गर्भ में सवार्थसिद्धि से आकर सोलह स्वप्नों द्वारा सूचित करते हुए उनके दाम्पत्य जीवन को आनंदमयी बनाते हुए सावनवदी दशमी को गर्भ में आये थे। वैशाख शुक्ल एकम् को कृतिका नक्षत्र में 9 मास रत्नवृष्टि के साथ आप भी जगत् के लिए अनोखे रत्न के रूप में प्राप्त हुए थे। उनका शुभ चिह्न छाग (बकरा) था। उनकी पूर्ण आयु 95000 वर्ष की थी। बच्चों ! एक बात और देखिये कि जैसे काल का प्रभाव पड़ रहा है उसी प्रकार तीर्थंकरों की आयु आदि कम होती जा रही है । कुन्थुनाथ भगवान् का बाल्यकाल 23750 वर्ष का था। कुरु वंशीय क्षत्रिय भगवान् के शरीर की लम्बाई 35 धनुष तथा उनका रंग स्वर्ण के समान था। साथ ही कामदेव होने के कारण सुन्दर शरीर के धारक भगवान् ने छः खण्ड जीतकर चक्रवर्ती पद प्राप्त कर 47500 वर्ष तक 96000 रानियों के साथ

राज्य सुख का उपभोग किया । एक बात और ध्यान देने योग्य है कि जो भी चक्रवर्ती होते हैं उनकी 96 हजार रानियाँ होती ही हैं । इतना सुख होते हुए भी किसी दिन अचानक जातिस्मरण होने से कि मैं पूर्वभव में मुनि था इस कारण आज मुझे ये सुख प्राप्त हुए हैं । ये सुख विनाशिक हैं। नष्ट हो जायेंगे। इसलिए क्यों न मैं ऐसे सुख को प्राप्त करूँ जो कभी भी नष्ट नहीं होगा । ऐसे विचार करते –करते वे विरक्त हो गए और सहेतुक वन में उपवास सहित अपराह्न काल में वैशाख शुक्ला एकम् कृतिका नक्षत्र में 1 हजार राजाओं साहित दीक्षा धारण कर 16 वर्ष तक तपश्चरण करने के पश्चात् सहेतुक वन में अपराह्न काल मे तिलक वृक्ष के नीचे कृतिका नक्षत्र में केवलज्ञान की ज्योति सारे जगत में फैलाते हुए भगवान् समवशरण में स्वयंभू आदि 35 गणधर, पूर्वधर 700, शिक्षक 43150, अवधिज्ञानी 2500, केवली 3200, विक्रियाधारी 5100, विपुलमती 3350, वादी 2 हजार कुल 60000 मुनि, मुख्य आर्यिका भाविता आदि 60350 आर्यिकाओं, 1 लाख श्रावक, 3 लाख श्राविकाओं सहित विराजमान होते हुए 23734 वर्ष तक इच्छा रहित भव्यों के पुण्योदय से उपदेश देते हुए व्यतीत किये। मोक्ष जाने से पहले समवशरण विघटित हो गया । दिव्यध्वनि खिरना भी बन्द हो गई । भगवान् ने एक मास का योग निरोध किया । तत्पश्चात् 1000 मुनि सहित प्रदोषकाल में कृतिका नक्षत्र में सम्मेदशिखर से मोक्ष गए । इनकी सेवा में सदा ही तत्पर रहने वाले यक्ष का नाम गन्धर्व देव और यक्षिणी का नाम माता महामानसी था।

18. अरहनाथ जी

अरहनाथ भगवान् जी भी तीन पदवी के धारी थे। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ व अरहनाथ ये तीनों भगवान् तीन–तीन (तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव) पदवी के धारी थे। जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में भारत देश के हस्तिनापुर नगर में सुदर्शन राजा की मित्रा रानी के गर्भ में अपराजित नामक स्वर्ग से आकर उनके जीवन को धन्य बनाया। उन्होंने मंगसिर शु. चतुर्दशी रोहिणी नक्षत्र में दस अतिशय सहित जन्म लेकर तीन लोक को आनन्दित किया । ये कुरुवंशीय क्षत्रिय थे। उनकी सम्पूर्ण आयु चौरासी हजार वर्ष की थी। तथा इक्कीस हजार वर्ष बाल्यकाल में व्यतीत किया।

भगवान् 30 धनुष लम्बाई वाले स्वर्ण वर्ण के थे। अति सुन्दर होने के साथ-साथ कामदेव तथा षट्खण्ड के विजेता चक्रवर्ती और सब जीवों के प्रति वात्सल्य भाव से युक्त थे। उन्होंने तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया था इस कारण तीर्थंकर थे।

आप विवाहोपरान्त 96000 रानियों के साथ 42 हजार वर्ष तक राज्य सुख में मग्न रहे । परन्तु एक दिन मेघों का विनाश देखकर उन्हें उस राज्य सुख से विरक्ति आ गई और सहेतुक वन में अपराह्न काल में एक हजार राजाओं के साथ एक उपवास सहित दीक्षा ली और दीक्षा लेने के बाद सोलह वर्ष तक अध्यात्म साधना में लीन रहकर कार्तिक कृ. द्वादशी अपराह्न काल में सहेतुक वन में रेवती नक्षत्र में, केवलरवि किरणों से तीनलोक को प्रकाशित करते हुये 3½ योजन प्रमाण वाले समवशरण में कुम्भ आदि तीस गणधर, पचास हजार ऋषि जिनमें से 610 पूर्वधर, 35835 शिक्षक, 2800 अवधिज्ञानी, 2800 केवली, विक्रियाधारी 4300, विपुलमति 2050, वादी 1600, 60 हजार आर्यिकाओं में मुख्या-आर्यिका कुन्थुसेना थी। श्राविकायें एक लाख और तीन लाख श्रावक सहित विराजमान होकर 20984 वर्ष तक देश-विदेश में धर्मोपदेश देते हुये, संघ सहित विहार करते हुये भव्य जीवों का कल्याण किया और समवशरण विघटित होने के बाद एक मास पूर्व योग निरोध करने के पश्चात् प्रत्यूष काल के रोहिणी नक्षत्र में सम्मेदशिखर से मोक्ष महल की ओर प्रयाण किया ।

19. मल्लिनाथ जी

भरतक्षेत्र के मिथिला नगरी के राजा कुम्भ थे और उनकी रानी प्रभावती के गर्भ में अपराजित नामक स्वर्ग से चैत्र सुदी एकम् के दिन आकर उनके जीवन को विशेष सुःख देते हुए मल्लिनाथ भगवान् ने मंगसिर शुक्ला ग्यारस अश्विनी नक्षत्र में जन्म लेकर इक्ष्वाकु वंश को गौरवान्वित किया । क्षत्रिय जाति की शोभा बढ़ाते हुए भगवान् ने जगत् को आननन्दित किया । उनका चह्न 'कलश' था। भगवान की आयु 55 हजार वर्ष की थी। उनके शरीर का उत्सेध 25 धनुष था। स्वर्ण रंग वाले थे। उन्होंने खेल कूद व मनन् चिंतन आदि करते हुए 100 वर्ष बाल्यकाल में बिताया। भगवान् ने राज्य नहीं किया और न ही विवाह किया, वे

बाल ब्रह्मचारी थे। वे अध्रुवादि भावना का चिन्तवन करते हुये इस जगत् के सब पदार्थ अध्रुव, विनाशिक हैं, इस कारण संसार रूपी कीचड़ में कभी नहीं फँसना चाहिए, आदि विचार करते हुए विरक्त होकर जयति पालकी में सवार होकर उन्होंने अश्विनी नक्षत्र पूर्वाह्न काल में शालीवन में 2 उपवास सहित मंगसिर शुक्ला ग्यारस को 300 राजाओं के साथ आत्महितकारी दीक्षा धारण करने के पश्चात् आहार चर्या को निकले । वप्प राजा नन्दिषेण से विधिपूर्वक नवधा भक्ति सहित प्रासुक आहार कर उन्हें कृतार्थ किया तथा राजा ने पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये । भगवान् ने 6 दिन तक आत्मसाधना में लीन रहने के पश्चात् और केवल 6 दिन के बाद ही उन्हें शालली (श्वेत) वन अशोक वृक्ष के नीचे अगहन सुदी ग्यारस अश्वनि नक्षत्र में अपराह्न काल में चार घातियाँ कर्मों को नाश करके केवलज्ञान को प्राप्त किया और उसी समय कुबेर ने तीन योजन विस्तार वाले समवशरण की रचना की जिसमें विशाखा आदि 28 गणधर, 2200 केवली, 550 पूर्वधारी श्रुतकेवली 29000 पाठक शिक्षक मुनि, 2200 पूज्य अवधि ज्ञानी मुनि, 1400 वादी, 2900 विक्रियाधारी, 1750 मनः पर्यय ज्ञान के धारी, 40000 मुनिगण, वधुसेना आदि को लेकर 5500 आर्यिकाएँ मुख्य श्रोता नारायण को लेकर एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकाएँ थी। उनकी सेवा में तत्पर रहने वाले यक्ष का नाम कुबेर और यक्षिणी का नाम अपराजिता था। बच्चों सोचो उस समय इतना बड़ा संघ व समवशरण की निराली शोभा भला किसके मन को न हरती होगी । ये तो आप स्वयं भी अपने आत्मज्ञान से सोच सकते हैं । भगवान् की दिव्य ध्वनि बंद हो गयी और समवशरण विघटित होने के बाद एक महीने का योग धारण कर 5000 मुनियों के साथ सम्मेदगिरि पर विराजित होकर मोक्ष पद प्राप्त किया ।

20. मुनिसुव्रत नाथ जी

भारतवर्ष की सौभाग्यमयी वसुन्धरा सदा धर्म, धर्मात्मा और वीर महापुरुषों का जन्म दात्री रही । इसी शृंखला में 'मुनिसुव्रतनाथ' राजगृह नगरी में सुमित्रराज राजा की पद्मा रानी के मणिवत् गर्भ में आनत नामक स्वर्ग से आकर उन दोनों के भाग्य की कांति की ओर भी प्रकाशित करते हुए उन्होंने माता को बिना कष्ट दिए

आसोज वदी 2 के दिन श्रवणनक्षत्र में मकरराशि के रहते हुए प्रातःकाल जन्म लिया। इन्द्र ने उनका नाम मुनिसुव्रत और उनका चिह्न 'कछुआ' रखा। श्री मल्लिनाथ तीर्थंकर के 54 लाख वर्ष बीतने पर इनका जन्म हुआ। इनकी आयु 30 हजार वर्ष की थी। तथा 20 धनुष (80हाथ) का ऊंचा शरीर था। शरीर की कांति मयूर के समान नील वर्ण की थी। इनका रूप, लावण्य, बुद्धि अप्रतिम थी। देवकुमारों के साथ आनन्दक्रीड़ा करते हुये 25 हजार वर्ष बीतने के पश्चात यौवन के प्रारंभकाल में विवाहोपरान्त राज्यभोग और न्याय के साथ प्रजा की रक्षा करते हुए 15000 वर्ष व्यतीत किये। वे यादव वंशीय क्षत्रिय थे। भगवान् को राज्य सुख भोगते हुये कई दिन हो गये कि अचानक एक हाथी को सम्बोधित करते हुए उन्हें भी जातिस्मरण से वैराग्य हो गया और अपने ज्येष्ट पुत्र विजय को राज्य देकर नील वन में अपराह्न काल में तीन उपवास व 1000 राजा सहित दीक्षा ली। 11 मास का कठोर तपश्चरण कर फाल्गुन कृष्ण को नील वन में श्रवण नक्षत्र में पूर्वाह्न काल में चम्पक वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त किया। 2½ योजन प्रमाण वाले कुबेर द्वारा निर्मित समवशरण में मल्लि आदि 18 गणधर थे, 500 द्वादशांग के वेत्ता 21000 उपाध्याय-शिक्षक, 1800 अवधिज्ञानी, 1500 मनः पर्यय के धारक, 1800 केवलज्ञानी, 2200 विक्रियाधारी, 1200 वादी ऐसे 30000 मुनि थे, पुष्पदत्ता प्रमुख आर्यिका के साथ 50000 आर्यिकायें, एक लाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें, असंख्यात देव-देवियाँ और असंख्यात पशु-पक्षी थे। भुकुटी नाम का यक्ष और अपराजिता यक्षी थी। अपने इस संघ के साथ भगवान् ने 7499 वर्ष एक मास तक देश-विदेश में विहार कर भव्य जन समुदाय को धर्मामृत पिलाया। भगवान् ने प्रदोष बेला श्रवण नक्षत्र में सम्मेद शिखर से 1000 मुनियों के साथ मोक्ष प्राप्त किया था।

21. श्री नमिनाथ

बच्चों ! हम जिस क्षेत्र में रहते हैं उसका नाम भी भरत क्षेत्र है और इसी भरतक्षेत्र में भारत देश है। उसी भारत देश की मिथिला नगरी में विजय नरेन्द्र नाम के राजा और रानी वप्रिला के गर्भ में अपराजित स्वर्ग से सावन वदी दूज को

एक महापुरुष आये और 15 मास तक उस राजा के आंगन में कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि हुई। अश्वनी नक्षत्र में आषाढ़ शुक्ल दशमी के दिन उनका जन्म हुआ और दोनों दम्पत्तियों को आनन्द विभोर करते हुए सारे जगत् को सुख का सन्देश सुनाया। इनकी पूर्ण आयु दस हजार वर्ष की थी। शरीर का वर्ण स्वर्ण के समान था। इनका चिह्न 'नील कमल' था। इनका इन्द्र ने बहुत ही धूमधाम से विधिपूर्वक जन्मोत्सव मनाया। इन्द्राणी ने भगवान् को गोद में लिया। अभिषेक के बाद उन्हें स्वर्ग के वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया और इन्द्र ने भगवान् के साथ खेलने को देवकुमारों व उनकी सेवा के लिये अलग-अलग देवियों को नियुक्त किया। इस प्रकार क्रीड़ा आदि करते हुए 7500 वर्ष बीते और यौवनकाल में प्रवेश किया। महाराज विजय ने उनका विवाह कर उन्हें राज्य दे दिया। उनका राज्याभिषेक भी इन्द्रराज की उपस्थिति में हुआ और उन्होंने 5000 वर्ष तक न्यायपूर्वक निष्कंटक राज्य किया।

भगवान् मुनिसुव्रतनाथ के मोक्ष जाने के 60 लाख वर्ष व्यतीत होने पर इनका अवतरण हुआ था। इन्हें भी जातिस्मरण से वैराग्य हुआ और अपने पुत्र सुप्रभ को राज्याधिकारी बनाकर स्वयं चैत्रवन में अपराह्न काल में 10000 राजाओं के साथ तिथि वैशाख कृष्ण दशमी को अश्विनी नक्षत्र में दीक्षा ली और दो दिन के उपवास के बाद वीरपुर नगर में विधिपूर्वक राजा दत्त ने पड़गाहन कर नवधाभक्ति पूर्वक आहार दिया और पञ्चाश्चर्य प्राप्त कर अपना जन्म सफल किया। नौ वर्ष अध्यात्म साधन में लीन होकर चित्रवन में वकुल वृक्ष के नीचे, चैत्र शुक्ल तृतीय तिथि को अपराह्न काल में केवलज्ञान प्राप्त कर, 2 योजन प्रमाण वाले, देवों द्वारा बनाये गये समवशरण में विराजमान हुये। वह समवशरण आकाश में भूमि से पाँच-सौ धनुष ऊंचा था। चारों ओर स्वर्ण की सीढ़ियाँ थीं। भगवान् को जिस भी वृक्ष के नीचे केवलज्ञान होता था वे सब अशोक वृक्ष रूप में परिणत हो जाते थे। इनके समोवशरण में सुप्रभार्य आदि 17 गणधर थे। 450 ग्यारह अंग पूर्व के पाठी थे। 12600 उपाध्याय, 1600 अवधिज्ञानी, 1600 केवलज्ञानी, 1500 विक्रिया ऋद्धि धारी, 1250 मनःपर्यय ज्ञानी, एक हजार वादि मुनिराज थे। इस प्रकार सम्पूर्ण मुनिराजों की संख्या 20000 थी। मुख्य आर्यिका 'मार्गिणी' आदि को लेकर 45000 आर्यिकाएँ थीं। अनितंजय मुख्य श्रावक सहित एक

लाख श्रावक ओर तीन लाख श्राविकाएँ थीं । गोमेध यक्ष और बहुसर्पिणी यक्षिणी आदि थे। इस प्रकार इन सबके साथ भगवान् ने अनेक देशों में विहार करते हुए, जन-जन में धर्म-रस का प्रभाव डाल कर उन्हें सच्चे सुख का मार्ग दर्शाते हुए 2491 वर्ष पूर्ण करने के बाद एक माह का योग निरोध किया । दिव्यध्वनि बन्द कर दी और समवशरण विघटित हो गया ।

भगवान् ने वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को सम्मेदशिखर के मित्रधर कूट पर एक हजार मुनियों के साथ प्रत्युष काल में मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध शिला को प्राप्त किया ।

22. अरिष्ट नेमि

पुराण एवं इतिहास प्रसिद्ध नेमिनाथ भगवान् जैन धर्म के 22वें तीर्थंकर थे। हिन्दू धर्म में इन्हें विशेषकर अरिष्ट नेमि के रूप में जाना जाता है। नेमिनाथ भगवान् नारायण कृष्ण के चचेरे भाई थे। नेमिनाथ का जीव अपराजित विमान से कार्तिक वदी षष्टी को शौरीपुरी (शिकोहाबाद, उ.प्र.) के राजा समुद्रविजय की रानी शिवा देवी के गर्भ में आया । वैशाख शुक्ल त्रयोदशी तथा चित्रा नक्षत्र में उनका जन्म हुआ। वे यादव वंशी क्षत्रिय थे। उनकी पूर्ण आयु एक हजार वर्ष की थी जिनमें से उनका कुमार काल 300 वर्ष का था। उनके शरीर की ऊँचाई दस धनुष की थी। शरीर का वर्ण नीला था, उनका लाञ्छन (चिह्न) शंख था, जब वे विवाह के लिए वर-यात्रियों के साथ जा रहे थे तब वध के लिये बंधे निर्दोष निरीह पशुओं की करूण -क्रंदन ध्वनि को सुनकर वे संसार शरीर भोगों से विरक्त हो गये। विरक्त होकर श्रावण शुक्ला षष्टी तथा चित्रा नक्षत्र में सहकार वन में जाकर उपवास सहित अपराह्न काल में दीक्षा धारण कर ली । उनके साथ 1000 व्यक्तियों ने भी दीक्षा धारण की । उन्होंने 56 दिन तक कठोर आत्म-साधना की जिससे उन्हें आसोज शुक्ला प्रतिपदा के पूर्वाह्न काल में उर्जयन्त गिरि(गिरनार) में चित्रा नक्षत्र में लोकालोक प्रकाश करने वाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ । जिस वृक्ष के नीचे उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हुआ वह मेषऋगं वृक्ष था। उन्होंने 699 वर्ष 10 माह 4 दिन तक विभिन्न क्षेत्र-देश में विहार करके धर्मोपदेश देकर जनकल्याण किया । उनके समवशरण का विस्तार 1½ योजन था।

इनके विशाल धर्म संघ में एक लाख श्रावक तीन लाख श्राविकाएँ, 40000 आर्यिकाएँ थीं जिसमें मुख्य आर्यिका यक्षि थी। उनके ग्यारह गणधर थे जिनमें वरदत्त मुख्य गणधर थे। उनकी धर्म सभा में 18000 ऋषि में से 400 पूर्वधर, 11800 उपाध्याय शिक्षक, 1500 अवधिज्ञानी, 1500 केवली, 1100 विक्रियाधारी, 900 विपुलमति, 800 वादी विराजमान होते थे। इनके समवशरण में पार्श्व यक्ष एवं कुसुमाण्डी यक्षिणी भक्ति भाव से अवनत होते हुए रहते थे। नेमिनाथ भगवान् ने 1 माह का योग निरोध करके गिरनार (ऊर्जयन्त) पर्वत से चित्रा नक्षत्र के प्रदोष काल में शेष अघातियाँ कर्म नाश करके शाश्वतिक सुख-स्वरूप सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए ।

23. उपसर्ग विजयी पार्श्वनाथ

अन्तिम तीर्थंकर महावीर भगवान के मोक्ष जाने से 250 वर्ष पहले जैन धर्म के 23 वें भगवान् पार्श्वनाथ मोक्ष पधारे थे। ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् वैशाख वदी दोज को वाराणसी के राजा अश्वसेन की रानी वामादेवी के गर्भ में अवतरित हुए । विश्व को सुख-शान्ति और समता का सन्देश देने वाले भगवान् ने पौष कृष्ण ग्यारस तिथि तथा विशाखा नक्षत्र में जन्म ग्रहण किया था। इनका वंश उग्रवंश था। इनकी पूर्व आयु 100 वर्ष की थी। जिनमें से कुमार काल 30 वर्ष का था उनका नव हाथ प्रमाण शरीर मनोहर हरित वर्ण का था। उनका चिह्न सर्प था। वे ब्रह्मचारी थे और राजकुमार होते हुए भी राज्य शासन नहीं किया था। एक दिन कुमार अवस्था में हाथो पर सवार होकर भ्रमण के लिए जंगल में गए । वहाँ उन्होंने देखा कि एक तापस जो कि उनके नाना थे पंचाग्नि तप कर रहे हैं । वे तो जन्मतः अवधिज्ञानी थे। वे उस अवधिज्ञान से देखते हैं कि उस जलती लकड़ी के बीच में एक नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा है । दया के अवतार पार्श्वनाथ भगवान् उस तापस के पास जाकर निर्भय एवं उपकार की भावना से प्रेरित होकर बोलते हैं - तापस ! तुम इस प्रकार अधर्म क्यों कर रहे हो ? तब तापस बोलता है--- आज का बालक क्या बोलता है ? मैं तो तपश्चरण कर रहा हूँ, पाप या अधर्म कैसे हुआ ? तब पार्श्वनाथ भगवान् निर्भय होकर बोलते हैं कि इस लकड़ी के बीच में एक नाग-

नागिन का जोड़ा जल रहा है । जिससे आपको महान् पाप लग रहा है । तब वह तापस आश्चर्य से पूछता है –क्या, नाग–नागिन कहाँ है ? तब पार्श्वनाथ भगवान् के इशारे से उस लकड़ी की ओर इंगित करते हुए कहा कि अगर इसे फाड़ेंगे तो वे निकलेंगे । तापस कुल्हाड़ी लेकर इस लकड़ी को फाड़ता है । तब अर्ध जले हुए नाग–नागिन का जोड़ा उसमें से निकाला तब पार्श्वनाथ भगवान ने दया से उनको णमोकार मंत्र सुनाया जिससे वे नाग–नागिन मरकर धरणेन्द्र –पद्मावती हुए । इन्होंने ही भगवान् का उपसर्ग दूर किया था।

पार्श्वनाथ भगवान् जब नवयौवन सम्पन्न हुए तब उन्हें जाति स्मरण हो गया। जाति स्मरण के कारण संसार की असारता का परिज्ञान हो गया । जिससे उन्हें वैराग्य हुआ, उस वैराग्य की अनुमोदना करने के लिये लौकान्तिक देव आये । पार्श्वनाथ भगवान् ने अश्वत्थ वन में माघ शुक्ला ग्यारस की तिथि विशाखा नक्षत्र के पूर्वाह्नकाल में 2 उपवास लेकर 300 सहदीक्षितों के साथ अंतरंग बहिरंग परिग्रह को त्यागकर पंचमुष्ठी केशलोंच सहित दीक्षा ले ली । 4 मास कठोर मौन व आत्मसाधना के फलस्वरूप उन्हें चैत्र कृष्ण चतुर्थी विशाखानक्षत्र में शक्रपुर नामक स्थान में पूर्वाह्नकाल में अतीन्द्रिय केवलज्ञान प्रकट हुआ । उन्होंने देवों द्वारा रचित 1¼ योजन प्रमाण समवशरण में विराजमान होकर 69 वर्ष 8 माह तक दिव्यध्वनि के द्वारा भव्य जीवों सम्बोधित किया । इनके शिष्य वर्ग में से 16000 ऋषि थे जिसमें 350 पूर्वधर, 10900 शिक्षक, 1400 अवधिज्ञानी, 1000 केवली, 1000 विक्रियाधारी, 750 विपुलमति, 600 वादी थे। शुलोका आदि 38000 आर्यिकायें थीं । गृहस्थ शिष्यों में तीन लाख श्राविका तथा एक लाख श्रावक थे। स्वयंभू आदि 13 गणधर थे। धर्मोपदेश के लिए जिस धर्मसभा की रचना इन्द्र ने की, उसकी लम्बाई 1¼ योजन थी। धव उनका अशोक वृक्ष था, जिसके नीचे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। सम्मेदशिखर में एक माह का योग निरोध करके 36 केवलियों के साथ विशाखा नक्षत्र के प्रदोषकाल (प्रातःकाल) में सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट करके एक ही समय में सिद्धशिला में अनन्तकाल तक विराजमान हो गये ।

पार्श्वनाथ भगवान् की मूर्ति का भारत में सबसे अधिक प्रचलन है क्योंकि पार्श्वनाथ भगवान घोर उपसर्ग विजयी तीर्थंकर थे, क्योंकि उन्होंने कमठकृत 7

दिन का उपसर्ग समता भाव से सहन करके केवलज्ञान प्राप्त किया था। जिस स्थान पर उन्हें उपसर्ग हुआ था एवं धरणेन्द्र, पद्मावती ने उपसर्ग निवारण के लिये सर्प का रूप धारण किया था, उस क्षेत्र का नाम अहिच्छत्र से अहिच्छेत्र पड़ा जो कि वर्तमान में उत्तर प्रदेश के बरेली जिला में आंवला तहसील के रामनगर में है ऐसा माना जाता है । परन्तु शिलालेख के आधार पर मैंने सिद्ध किया है कि यह क्षेत्र वास्तव में भीलवाडा (राजस्थान) के बिजौलिया में है । विशेष जिज्ञासु मेरे द्वारा रचित "पार्श्वनाथ का तपोपसर्ग कैवल्य धाम : बिजौलिया" का अध्ययन करें ।

24. अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान

प्रिय बच्चो ! अभी तक आप लोगों ने 23 तीर्थंकरों के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त कर ली । इस काल के अन्तिम तीर्थंकर महावीर भगवान् के बारे में जानकारी दे रहा हूँ । जिनका प्रचार भारतवर्ष में सबसे अधिक है । इसका कारण यह है कि महावीर भगवान् अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा काल की दृष्टि से अधिक निकट हैं । अभी उनके ही शासन काल में हम लोग निवास करे रहे हैं । इसका मतलब यह नहीं कि अन्य तीर्थंकर का महत्व इनसे कम है । महावीर भगवान ने धर्म के लिये जो कुछ किया था उससे कुछ कम अन्य तीर्थंकरों ने नहीं किया था। भारतीय विद्वानों के साथ–साथ कुछ विदेशी मानते हैं कि जैन धर्म हिन्दू धर्म या बौद्ध धर्म की एक शाखा है एवं महावीर भगवान् ने जैन धर्म की स्थापना की थी। प्रिय बच्चो! यह धारणा कोरी कल्पना है एवं भूल से भरी है । क्योंकि अभी–अभी आपने अध्ययन भी किया कि महावीर से कई करोड़ों, अरबों वर्ष पहले इस युग के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ हुये एवं उनके बाद भी मध्य में 22 तीर्थंकर हुये । आदिनाथ तीर्थंकर के बारे में विशेष जानकारी के लिए लेखक द्वारा रचित "**युग निर्माता ऋषभदेव**", तीर्थंकर के बारे में विशेष जानकारी के लिये "**क्रांति के अग्रदूत**" और इतिहास की जानकारी के लिये "**विश्व इतिहास**" का अध्ययन करें ।

23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के मोक्ष जाने के 250 वर्ष के बाद एक महान् जीव पुष्पत्तर विमान से आषाढ़ सुदी षष्ठी को च्युत होकर कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ की रानी प्रियकारिणी (त्रिशला) के गर्भ में आया । यह महान् आत्मा आगे

जाकर महावीर भगवान् बना । जब ये महान् आत्मा गर्भ में आया इसके छः महीने पहले ही इन्द्र ने कुबेर को आज्ञा देकर रत्नवृष्टि करवायी । यह रत्नवृष्टि लगातार जन्म तक होती रही । महावीर भगवान ने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के उत्तरा फाल्गुन नक्षत्र में जन्म लिया । वह दिन ईसा पूर्व 599 या विक्रम पूर्व 542 था। इनका क्षत्रिय नाथ (ज्ञातृ) वंश था। इन्द्र ने जन्माभिषेक के समय में इनके अंगूठे में सिंह का चिह्न देखकर इनका लक्षण सिंह रखा । इनकी पूर्ण आयु 72 वर्ष की थी। जिसमें से कुमार काल 30 वर्ष का था। तथा 7 हाथ प्रमाण इनका शरीर स्वर्ण वर्ण का था।

महावीर भगवान को जातिस्मरण होने के कारण ये संसार–शरीर–भोगों से विरक्त हो गये । इसी कारण वे न विवाह बन्धन में पड़े और न राज्य शासन ही किया । जब वे विरक्त हो गये तब लौकान्तिक देवों ने आकर उनकी सराहना की। महावीर भगवान् को मनुष्य और देव एक सुन्दर पालकी में बैठाकर नाथ वन में ले गये । मंगसिर कृष्ण दशमी तिथि तथा उत्तरा नक्षत्र के अपराह्न काल में एक दिन का उपवास लेकर 'नमः सिद्धेभ्यः' का ध्यान करते हुए पंचमुष्ठी केशलोंच करके एकाकी दीक्षा ले ली ।

यह दीक्षा दिवस 569 ई. पूर्व या 512 विक्रम पूर्व है । वे बारह वर्ष तक अखंड मौन लेकर आत्मसाधना में लीन रहे । उन पर भी पार्श्वनाथ के समान अनेक उपसर्ग हुये । आत्मध्यानी महावीर ध्यान से विचलित नहीं हुए । इस प्रकार 12 वर्ष की कठोर साधना के फलस्वरूप उन्हें ऋजुकूला नदी के तीर पर वैशाख शुक्ला दशमी के दिन तथा मघा नक्षत्र में लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्राप्त हुआ । यह दिन ई. पूर्व 557 या विक्रम पूर्व 500 था। उस केवलज्ञान कल्याणक को मनाने के लिए चतुर्निकाय देव आए और 1 योजन प्रमाण समवशरण की रचना की । इनके समवशरण में मनुष्य एवं देव के साथ पशु–पक्षी भी आकर धर्म श्रवण करते थे। इनकी धर्म सभा में इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर थे। इनके समवशरण में 300 पूर्वधर, 9900 शिक्षक, 1300 अवधिज्ञानी, 700 केवली, 800 विक्रियाधारी, 500 विपुलमति, 400 वादी मुनि थे। इस प्रकार पूर्ण ऋषियों की संख्या 14000 थी। आर्यिकाओं की संख्या 36000 थीं । आर्यिकाओं में मुख्य आर्यिका चन्दना थी। एक लाख श्रावक तथा तीन लाख

श्राविकायें थीं।

महावीर भगवान् तीस वर्ष तक अंग, बंग, कलिंग, मगध, सौराष्ट्र, गुजरात आदि देश में विहार करते हुए 718 भाषा में जनता को सम्बोधित करते थे। जब वे विहार करते थे तब देव लोग उनके चरण के नीचे स्वर्ण कमल की रचना करते थे। महावीर भगवान् को जब केवलज्ञान हुआ तब उनका शरीर परमौदारिक शरीर हो गया । परमौदारिक का अर्थ है शरीर के रक्त, मांस हड्डी आदि सप्त धातु एवं मल परिवर्तित होकर शुद्ध स्फटिक रूप में परिणमन कर लेना । केवलज्ञान होते ही वे पाँच हजार धनुष भूपृष्ट से ऊपर उठ गए थे। उपदेश, विहार आदि 5000 धनुष ऊपर ही होता था। इनके समवशरण में गुह्यक यक्ष, सिद्धायनी यक्षिणी भक्तिभाव से रहते थे। मोक्ष जाने के दो दिन पूर्व ही उपदेश देना बन्द कर दिया । और समवशरण का विघटन भी हो गया था। वे पावापुरी के पद्म सरोवर के मध्य भाग में स्थित हुये ई. पूर्व 527 या विक्रम पूर्व 470 कार्तिक कृष्णा अमावस्या के प्रत्युष काल के स्वाति नक्षत्र में चारों अघाति कर्मों को नष्ट करके मोक्ष पधारे। जब महावीर भगवान् को मोक्ष प्राप्त हुआ तब गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ । मोक्ष कल्याण एवं गणधर का केवलज्ञान उत्सव मनाने के लिये दीपमालिका प्रज्वलित कर उत्सव मनाया गया। तब से ही दीपावली उत्सव प्रचलित हुआ जो वर्तमान में जैन व अजैन में यह उत्सव मनाया जाता है ।

गौतम सिद्धार्थ (बुद्ध देव) का जन्म ईसा पूर्व 567 में होने के कारण भगवान् महावीर इनके समकालीन होने पर भी उनसे ज्येष्ट थे। महावीर का जन्म, दीक्षा, केवलज्ञानादि बुद्ध से पहले होनेके कारण स्वयं बुद्ध देव ने भी अनेक बार अपने शिष्यों के समक्ष महावीर भगवान् को सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी कहकर वर्णन किया जिसका वर्णन त्रिपिटक व बौद्ध साहित्य में अनेक जगहों में पाया जाता है । स्वयं बुद्ध महावीर भगवान् को एक स्वतंत्र धर्माचार्य, तीर्थंकर, धर्म प्रवर्तक मानने से यह सिद्ध होता है कि जैन धर्म एक स्वतंत्र धर्म है न कि हिन्दु या बौद्ध धर्म की शाखा।

वर्तमान में भी अनेक विद्वान अजैन व वैदेशिक विद्वान भी जैन धर्म को प्राचीन एवं स्वतंत्र धर्म मानने लगे हैं जिसका प्रमाण बौद्ध साहित्य , हिन्दु साहित्य, जैन साहित्य व प्राचीन अवशेष हैं ।

卐卐卐

अध्याय-3

तीर्थंकरों की अतिमानवीय शक्ति

पूर्व से भावित सोलह भावनाओं से संचित सातिशय पुण्य कर्म के कारण तथा अध्यात्मिक तप ध्यानादि दीर्घ साधनों से तीर्थंकर भगवान विश्व की सर्वोत्कृष्ट अतिमानवीय शक्तियों से समन्वित होते हैं । उनकी अतिमानवीय शक्तियों में सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक शक्तियाँ अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि हैं। इसके साथ-साथ वे समवशरण, दिव्य-ध्वनि आदि अनेक अन्यान्य शक्तियों से भी मण्डित-विभूषित होते हैं । इन शक्तियों की उपलब्धि का सर्वोत्कृष्ट कारण अध्यात्मिक साधना है ।

यतिवृषभाचार्य ज्ञान-विज्ञान-खगोल-भूगोल ऐतिहासादि का विश्वकोष स्वरूप तिलोयपण्णत्ति में कहते हैं –

जे संसार सरीर भोग विसए णिव्वेय णिव्वाहिणो ।
जे सम्मत्त विभूसिदा सविणया घोरं चरंता दवं,
जं सज्झाय महद्धि वड्ढिव गदा झाणं च कम्मंतकं ।
ताणं केवलणाणमुत्तमपदं जाएत्ति किं कोदुकं ॥ 604 ॥ तिलोयपण्णत्ति

जो संसार शरीर और भोग विषयों में निर्वेद को धारण करने वाले हैं, जो सम्यकत्व से विभूषित हैं, विनयों से संयुक्त हैं और घोर तप का आचरण करते हैं, जो स्वाध्याय से महान ऋद्धि और वृद्धि को प्राप्त हैं और कर्मों का अन्त करने वाले ध्यान को भी प्राप्त हैं उनके यदि केवल ज्ञान रूप उत्तम पद उत्पन्न होता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

घण घाइकम्म महणा,
तिहुवण वर भव्य कमल मत्तंडा ।
अरिहा अणंत णाणे,
अणुवमसोक्खा जयंतु जए ॥ ति. प. भाग 2

जो प्रबल घातिया कर्मों का मंथन करने वाले हैं, तीन लोक के उत्कृष्ट भव्य जीव रूपी कमलों को विकसित करने में मार्तण्ड अर्थात् सूर्य के समान हैं, अनंत ज्ञानी हैं और अनुपम सुख का अनुभव करने वाले हैं, ऐसे अरिहन्त भगवान जग

में जयवन्त होवें ।

जादे केवल णाणे परमोरालं जिणाण सव्वाणं ।
गच्छदि उवरिं चावा पंच सहस्साणि वसुहाओ ॥ गा. 705

केवल ज्ञान के उत्पन्न होने पर समस्त तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर पृथ्वी से 5000 धनुष्य प्रमाण ऊपर चला जाता है ।

भुवणत्तयस्य ताहे अइसय कोडीय होदि पक्खोहो ।
सोहम्म पहुदि इंदाण आसणाइं पि कंपंति ॥ गा. 706

उस समय तीनों लोक में अतिशय क्षोभ उत्पन्न होता है और सौधर्मादिक इन्द्रों के आसन कंपायमान होते हैं ।

तक्कंपेण इन्द्रा संखुग्घोसेण भवणवासिसुरा ।
पडहर वेहिं वेंतर सीहणिणादेण जोइसिया ॥ गा. 707

आसनों के कंपित होने से इन्द्र शंख के उद्घोष से, भवनवासी देव पटह के शब्द से, व्यन्तर देव सिंहनाद से, ज्योतिष देव तीर्थंकरों के केवल ज्ञान की उत्पत्ति को जानकर भक्ति युक्त होते हुये सात कदम आगे जाकर परोक्ष में प्रणाम (नमोऽस्तु) करते हैं ।

घंटाए कप्पवासी णाणुप्पत्ति जिणाण णादुणं ।
पणमन्ति भत्ति-जुत्ता गंतूणं सत्त वि कमाओ ॥ गा. 708

घण्टा के शब्द से कल्पवासी देव तीर्थंकरों के केवल ज्ञान की उत्पत्ति को जानकर भक्ति पूर्वक सात कदम (डग) आगे चलकर परोक्ष में ही प्रणाम (वन्दना) करते हैं ।

अहमिंदा जे देवा आसण कम्पेण तं वि णादूणं ।
गंतूण तेत्तियं चिय तत्थ ठिया ते णमन्ति जिणे ॥ गा. 709

जो अहमिन्द्र देव हैं वे भी आसनों के कंपित होने से केवल ज्ञान की उत्पत्ति को जानकर और उतने ही (सात कदम) आगे जाकर वहाँ स्थित होते हुए जिन भगवान को नमस्कार करते हैं ।

ताहे सक्काणआए जिणाण सयलाण समवसरणाणिं ।
विक्किरियाए धणदो विरएदि विचित्तरुवेहिं ॥ गा. 710

उस समय सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर विक्रिया के द्वारा सम्पूर्ण तीर्थंकरों के समवशरण को विचित्र रूप से रचता है ।

उपरोक्त घटनाओं का वैज्ञानिक कारण यह है कि सर्वविश्वव्यापी भौतिक

महास्कन्द (पौद्गलिक महास्कन्द Universal material molecule) धर्मद्रव्य (Aether, the medium of motion for soul and matter. जीव एवं पुद्गल को गमन में सहायक –माध्यम द्रव्य) शब्द वर्गणादि है । जब तीर्थंकरादि के जन्मादि असाधारण घटनायें घटती हैं, तब उस घटनाओं का सम्प्रसारण उपरोक्त विश्वव्यापी महास्कन्दादि के माध्यम से होता है, जिससे प्रेरित होकर स्वर्गादि के घण्टादि ध्वनित हो जाते हैं । इसके माध्यम से ही अनेक राजू प्रमाण (अनेक प्रकाश वर्ष Light Years) सुदूर स्वर्गादि में सूचनायें स्वयमेव प्रसारित हो जाती है । जैसे वर्तमान में रेडियो, टी.वी., बेतार के तार के माध्यम से सम्वाद सम्प्रेषण होता है ।

जन्म के 10 अतिमानवीय घटनायें (अतिशय)

णिस्सेदत्तं णिम्मल गत्तत्तं दुध्दधवल रूहिरत्तं ।
आदिम संहडणत्तं समचउरस्संगसंठाणं ॥ 505 ॥
अणुवम-रूवत्तं णव-चपय-वर सुरहि गंध धारित्तं ।
अट्ठुत्तर वर लक्खण सहस्सधरणं अणंत बल विरियं ॥ 506 ॥
मिदहिद मधुरालाओ साभाविय अदिसय च दसभेदं ।
एदं तित्थयराणं जम्मग्गहणादि उप्पण्णं ॥ 507 ॥

तीर्थङ्कर भगवान पूर्व जन्म से ही सम्यक्त्वादि विश्व कल्याण रूप सोलह भावनाओं से भावित होकर सातिशय पुण्य कर्म को संचित करते हैं जिसके कारण उनके शरीर आदि निम्नोक्त विशिष्ट गुणों से सहित होता है ।

1. **स्वेद (पसीना) :–** एक शारीरिक मल है । रोग से परिश्रम, क्रोध, कामादिक भावों के कारण पसीना निकलता है । परन्तु तीर्थंकर भगवान का शरीर सातिशय पुण्य कर्म से निर्मित होने के कारण विशेष मलादि से रहित होता है । छद्मस्थ अवस्था में भी वे रोग एवं विशेष क्रोधादि भावों से रहित होने के कारण तथा वज्र –वृषभनाराच संहनन, अनंत बल–वीर्य के धनी होने के कारण पसीना नहीं आता एवं खेद अनुभव नहीं करते हैं ।

2. **निर्मल शरीरता :–** तीर्थंकर के शरीर सातिशय पुण्य पुञ्जस्वरूप होने के कारण निर्मल होता है । वे आहार करते हैं किन्तु निहार (मल–मूत्र) नहीं करते हैं ।

3. **दूध के सदृश श्वेत रक्त :–** तीर्थंकर भगवान का रूधिर दूध के समान

श्वते होता है । इसमें मनोवैज्ञानिक कारण निहित है । प्रत्येक जीव में (1) लालरक्त कण (2) श्वेत रक्त कण पाये जाते हैं । मनोवैज्ञानिक एवं चिकित्सा विज्ञान के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि श्वेत रक्त कण में रोग प्रतिरोधक शक्ति अधिक होती है अर्थात् जिनमें अधिक श्वेत रक्त कण होते हैं उन्हें शीघ्र रोग प्रभावित नहीं करते हैं । यदि रोग हो तो शीघ्र दूर हो जाता है । परीक्षण से यह भी ज्ञात हुआ है कि जिनके आचार–विचार परिशुद्ध हों उनके श्वेत रक्त कण में वृद्धि होती है और भी एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी है कि जब तक स्तन्यपायी मादा प्राणी संतान उत्पत्ति नहीं करती है तब तक उसके स्तनों में दूध का संचार नहीं होता है । जब संतान उत्पन्न होती है तब स्तन में दूध का संचार होता है । इसका वैज्ञानिक कारण यह है कि तब तक संतान की उत्पत्ति नहीं होती है तब तक वह माता में संतान के प्रति विशेष स्नेह, वात्सल्य व सेवाभाव नहीं होता है। संतान होते ही कुछ शारीरिक –रासायनिक परिवर्तन के साथ–साथ मानसिक प्रेम–वात्सल्य भाव में परिवर्तन होता है जिससे ग्रहित आहार रसरूप परिणत होता है उस रस का कुछ भाग दूध रूप में तथा कुछ शरीर स्थित रस भी दूध रूप में परनित कर लेता है, जिससे स्तन में दूध का संचार होता है ।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह प्रतिफलित होता है कि विशिष्ट गतिविधियों से शरीर में भी परिवर्तन होता है । यदि शुद्ध आहार–विहार (आचार–विचार) में श्वेत रक्त कण की वृद्धि होती है एवं स्वयं के संतान के प्रति वात्सल्य आदि भाव होने से शरीर में दूध की उत्पत्ति होती है तब जिसकी आत्मा सोलह कारण भावनाओं से भावित है एवं विश्व संतान की वात्सल्य भावना से ओत –प्रोत है उनका श्वेत रक्त होना स्वभाविक है ।

4. जन्मतः तीर्थंकर भगवान वज्रवृषभनाराज संहनन के धारी होते हैं । इस संहनन के कारण उनकी अस्थि वज्र के समान सुदृढ़ होती है ।

5. जिसके शरीर की संरचना योग्य स्थान प्रमाण एवं प्रमाण–प्रमाण से सहित होने के कारण से समचतुरस्र संस्थान होता है ।

6. उनके रूप लावण्य कामदेव, इन्द्र, किन्नर आदि से भी अधिक सुन्दर होता है । विश्व में सबसे अधिक सुन्दर रूप तीर्थङ्कर का होता है । कामदेव आदि के सुन्दर रूप में कामुकता रागादिक भाव टपकते हैं परन्तु तीर्थंकर का रूप विश्व में अनुपम होने पर भी उनमें वैराग्य सौम्य शांत रूप टपकता है ।

7. सातिशय पुण्य कर्म से तीर्थंकर का शरीर निर्माण होने के कारण तथा

मल–मूत्र से पसीना आदि से रहित होने से तीर्थंकर के शरीर से नवीन चम्पक की उत्तम गंध के समान गंध प्रवाहित होती है ।

8. श्रीवृक्ष, कमल, शंख, स्वस्तिक, अंकुश, तोरण,चामर, श्वेत छत्र सिंहासन,ध्वज, दो मत्स्य, दो कलश, चक्र, सूर्य,चन्द्र, मेरू लक्ष्मी, सरस्वती आदि 1008 सुलक्षण से उनका शरीर शोभायमान होता है ।

9. वे अनंत बल–वीर्य के धनी होते हैं ।तीनों लोक में सबसे अधिक वीर्यवान् तीर्थंकर होते हैं, इन्द्र,चन्द्र, सूर्य,यम, वरूण, नारायण,चक्रवर्ती आदिओं से भी तीर्थंकर अधिक वीर्यवान होते हैं ।

10. हित–मित–प्रिय–मृदु एवं मधुर भाषण तीर्थङ्कर करते हैं ।

उपरोक्त दश अतिशय तीर्थङ्करों के जन्म के समय में स्वाभाविक रूप से प्रगट होते हैं ।

तीर्थङ्करों की आयु

उसहादि-दससु आऊ, चुलसीदी तह बहत्तरी सट्ठी ।
पण्णास-ताल-तीसा, वीसं दस-दु-इगि-लक्ख-पुवाइं ॥586॥
तत्तो य वरिस लक्खं चपलसीदी तह बहत्तरी सट्ठी ।
तीस दस एक्कमाऊ सेयं-प्पहुंदि छक्कस्सं ॥ 587॥
तत्तो वरिस सहस्सा पणणउदी चउरसीदि पणवणअणं ।
तीस दस एक्कमाऊ कुंथ जिणप्पहुदि छक्कस्सं ॥ 588॥
वीससदमेक्कमाऊ पास जिणिंदस्स होइ णियमेण ।
सिरिवड्ढमाण आऊ बाहत्तरि वस्सि परिमाणो ॥ 589॥

पूर्व से उत्तरवर्ती तीर्थङ्करों की आयु क्रम से हीन–हीन होती गई है अर्थात् पूर्ववर्ती तीर्थङ्कर की आयु दीर्घ थी एवं उत्तरवर्ती तीर्थङ्कर की आयु कम है । वर्तमान अवसर्पिणी काल संबंधी 24 तीर्थङ्कर की आयु निम्न प्रकार है –

(1) आदिनाथ भगवान की आयु =84 लाख पूर्व $=592704\times10^{15}$
$=592704000000000000000$ वर्ष

(2)अजितनाथ=72लाखपूर्व 508032×10^{15}
$=508032000000000000000$वर्ष

(3)संभवनाथ =60 लाख पूर्व 42336×10^{16}
$=423360000000000000000$वर्ष

(4)अभिनंदननाथ=50 लाख पूर्व 3528×10^{17}
$=352800000000000000000$वर्ष

(5)सुमतिनाथ =40 लाख पूर्व 28228×10^{16}
$=282280000000000000000$वर्ष

(6)पद्मप्रभु =30 लाख पूर्व 21168×10^{16}
$=211680000000000000000$वर्ष

(7) सुपार्श्वनाथ =20 लाख पूर्व 14112×10^{16}
$=141120000000000000000$वर्ष

(8)चन्द्रप्रभु =10 लाख पूर्व 7056×10^{16}
$=705600000000000000000$ वर्ष

(9)पुष्पदंत =2 लाख पूर्व 14112×10^{16}
$=141120000000000000000$ वर्ष

(10) शीतलनाथ =1 लाख पूर्व 7056×10^{15}
$=705600000000000000000$ वर्ष

(11) श्रेयांसनाथ =84 लाख वर्ष =8400000 वर्ष
(12) वासुपूज्य =72 लाख वर्ष = 7200000 वर्ष
(13) विमलनाथ =60 लाख वर्ष = 6000000 वर्ष
(14) अनंतनाथ =30 लाख वर्ष = 3000000 वर्ष
(15) धर्मनाथ =10 लाख वर्ष = 1000000 वर्ष
(16) शांतिनाथ =1 लाख वर्ष = 100000 वर्ष
(17) कुंथुनाथ =95 हजार वर्ष = 95000 वर्ष
(18) अरहनाथ =84 हजार वर्ष
(19) मल्लिनाथ =55 हजार वर्ष
(20) मुनिसुव्रतनाथ =30 हजार वर्ष
(21) नमिनाथ = 10 हजार वर्ष
(22) नेमिनाथ = 1 हजार वर्ष
(23) पार्श्वनाथ = 100 वर्ष
(24) महावीर भगवान = 72 वर्ष

तीर्थंकरों के शरीर का उत्सेध

पंचसय-धणु-पमाणो, उसह जिणेंदस्स होदि उच्छेहो ।
तत्तो पण्णासूणा, णियमेण पुप्फदंत पेरंते ॥
एत्तो जाव अणंतं दसदसकोदंड मेत्तपरिहीणो ।
तत्तो णेमिजिणंत पणपणचावेहि परिहीणो ॥
णव हत्था पासजिणे सग हत्था वड्ढमाणणामम्मि ।
एत्तो त्तित्थयराणं सरीर वण्णं परूवेमो ॥

(1) वृषभनाथ की ऊँचाई	=500 धनुष	= 2000 हाथ ।
(2) अजितनाथ	=450 धनुष	= 1800 हाथ ।
(3) संभवनाथ	=400 धनुष	=1600 हाथ ।
(4) अभिनंदन	=350 धनुष	=1400 हाथ ।
(5) सुमतिनाथ	=300 धनुष	=1200 हाथ ।
(6) पद्मप्रभु	=250 धनुष	=1000 हाथ ।
(7) सुपार्श्वनाथ	=200 धनुष	= 800 हाथ ।
(8) चंद्रप्रभु	=150 धनुष	= 600 हाथ ।
(9) पुष्पदंत	=100 धनुष	= 400 हाथ ।
(10) शीतलनाथ	= 90 धनुष	= 360 हाथ ।
(11) श्रेयांसनाथ	= 80 धनुष	= 320 हाथ ।
(12) वासुपूज्य	= 70 धनुष	= 280 हाथ ।
(13) विमलनाथ	= 60 धनुष	= 240 हाथ ।
(14) अनंतनाथ	= 50 धनुष	= 200 हाथ ।
(15) धर्मनाथ	= 45 धनुष	= 180 हाथ ।
(16) शांतिनाथ	= 40 धनुष	= 160 हाथ ।
(17) कुन्थुनाथ	= 35 धनुष	= 140 हाथ ।
(18) अरहनाथ	= 30 धनुष	= 120 हाथ ।
(19) मल्लिनाथ	=25 धनुष	=100 हाथ ।
(20) मुनिसुव्रतनाथ	=20 धनुष	= 80 हाथ ।
(21) नमिनाथ	=15 धनुष	= 60 हाथ ।
(22) नेमिनाथ	=10 धनुष	= 40 हाथ ।
(23) पार्श्वनाथ	= 9 हाथ ।	
(24) महावीर	= 7 हाथ ।	

केवलज्ञान के 11 अतिमानवीय घटनायें (अतिशय)

जोयण-सद-मज्जादं, सुभिक्खदा चउ दिसासु णिय ठाणा ।
णहयल-गमणमहिंसा, भोयण उवसग्ग परिहीणा ॥ 908 ॥
सव्वाहि मुह-ट्ठियत्तं, अच्छायत्तं अपम्हफंदित्तं ।
विज्जाणं ईसत्तं , समाणह रोमत्तणं सरीरम्मि ॥ 909 ॥
अट्ठरस-महाभासा, खुल्लय-भासा सयाइ सत्त तहा ।
अक्खर अणक्खरप्प, सण्णी जीवाण सयल भासाओ ॥ 910 ॥
एदासिं भासाणं, तालुव दन्तोट्ठ कंठ वावारे ।
परिहरिय एक्क कालं, भव्व जणे दिव्व भासित्तं ॥ 911 ॥
पगदीए अक्खलिदो, सम्झत्तिदयम्मि णव मुहुत्ताणि ।
णिस्सरदि णिरुवमाणो, दिव्वझुणी जाव जोयणयं ॥ 912 ॥
अवसेस काल समए, गणहर देविंद चक्कवट्टीणं ।
पण्हाणुरुवमत्थं, दिव्वझुणी सत्त भंगीहिं ॥ 913 ॥
छादव्व णव पयत्थे,पंचट्ठीकाय सत्त तच्चाणि ।
णाणविह हेदूहिं, दिव्वझुणी भणइ भव्वाणं ॥ 914 ॥
घादिक्खएणं जादा, एक्कारस अदिसया महच्छरिया ।
एदे तित्थयराणं, केवलणाणम्मि उप्पण्णे ॥ 915 ॥

प्रथमतः तीर्थङ्कर भगवान पूर्व भव में सञ्चित सातिशय पुण्यकर्म को लेकर अवतरित होते हैं । इसीलिये उनके जन्म के पहले एवं जन्म के अनन्तर भी अतिमानवीय घटनायें घटती हैं । परन्तु जब वे समस्त विषय वासनाओं को त्याग कर शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से आत्मा के प्रबल शत्रुस्वरूप घातियां कर्म को जला देते हैं तब आत्मा में निहित अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य पूर्ण रूप से समग्रता से प्रगट हो जाते हैं । पूर्व संचित विशिष्ट पाप के अभाव से एवं केवली अवस्था में उदय प्राप्त तीन लोक में विशिष्ट तीर्थंकर पुण्य प्रकृति के उदय से पहले से भी अधिक चमत्कार पूर्ण अतिमानवीय घटनायें घटती हैं । जैसे--

1. जिस स्थान में तीर्थङ्कर भगवान विराजमान होते हैं उस स्थान से चारों दिशाओं में 100 योजन (800मील) पर्यन्त सुभिक्षता रहती है ।

2. घातिया कर्म रूपी वजनदार पाप कर्म का नाश होने के कारण तीर्थंकर भगवान भूतल से 5000 धनुष (20,000 हाथ) ऊपर उठकर आकाश में

विराजमान होते हैं । जब वे विहार करते हैं तब भी वे आकाश में ही गमन करते हैं ।

3. पूर्व से ही अहिंसादि भाव से भावित होने के कारण एवं तीर्थंकर अवस्था में पूर्ण अहिंसा स्वरूप होने के कारण उनके सम्पर्क में आने वाले जीव तथा समोवसरण में रहने वाले जीव, हिंसादि जन्मजात परस्पर वैरत्व भाव का त्याग कर मैत्री से उनके समीप में बैठकर उपदेश श्रवण करते हैं । यहाँ तक कि समोवशरण में सिंह–गाय, बिल्ली–चूहा, मयूर–सर्प आदि परस्पर वैरत्व को छोड़कर प्रेम रूप से उपदेश सुनते हैं ।

4. घातिया कर्म के अभाव से अनन्त सुख, वीर्य को अनुभव करने के कारण तीर्थंकर भगवान भात–रोटी आदि कवलाहार रूप भोजन नहीं करते हैं। भोजन के कारणभूत भूख–वेदना को भी अनुभव नहीं करते हैं ।

5. अनन्त चतुष्टय के धनी तीन लोक एवं सौ इन्द्रों से पूजित अहिंसा के पूर्ण साकार मूर्ति को किसी प्रकार का उपसर्ग (बाधाऐं) नहीं होती हैं ।

6. केवलज्ञान अवस्था में रस, रूधिर, मांस, हड्डी आदि सप्त धातु से रहित शरीर के होने के कारण उनका शरीर शुद्ध स्फटिक के समान परमौदारिक शरीर हो जाता है । जिसके कारण उनके एक प्राकृतिक मुख ही चारों दिशाओं में दिखाई देने के कारण सम्पूर्ण दिक् में स्थित श्रोता वर्ग सोचते हैं कि भगवान हमारी ओर ही मुख करके स्थित हैं ।

7. परम औदारिक शरीर, सप्त धातु से रहित शुद्ध स्फटिक के समान होने से उनकी छाया नहीं पड़ती है ।

8. अनन्त वीर्य सम्पन्न केवली भगवान संकल्प –विकल्प से रहित होने के कारण उनकी दृष्टि निर्निमेष होती है ।

9. अनन्त ज्ञान–दर्शन सम्पन्न होने के कारण सम्पूर्ण विश्व में स्थित विद्याओं के स्वामी होते हैं अर्थात् वे भूत–वर्तमान–भविषयत कालीन सम्पूर्ण ज्ञान–विज्ञान के ज्ञाता होते हैं ।

10. सप्त धातु से रहित परमौदारिक शरीर होने के कारण नखों एवं केशों की वृद्धि नहीं होती है ।

11. अनन्त चतुष्टय के धनी–तीर्थङ्कर भगवान, सातिशय तीर्थङ्कर प्रकृति के उदय से 700 क्षुद्र भाषा तथा 18 महा भाषायें तथा संज्ञी जीवों की अक्षर, अनक्षरात्मक जो भाषाएं है उनको तालु, कंठ, दन्त, ओष्ट आदि के व्यापार से रहित होकर एक ही समय में एक साथ भव्य जीवों को उपदेश देते हैं ।

जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित तथा अनुपम दिव्य–ध्वनि, तीनों सन्ध्याकालों में नव मुहूर्त तक निकलती है तथा 1 योजन (8मील) तक जाती है । इसके अतिरिक्त गणधर देव, इन्द्र अथवा चक्रवर्ती आदि सातिशय पुण्य–पुरुष के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरुपणार्थ वह दिव्यध्वनि शेष समय में भी निकलती है । यह दिव्यध्वनि भव्य जीवों को छह द्रव्य, नौ पदार्थ, पाँच अस्तिकाय और सात तत्वों का नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा निरुपण करती है । इस प्रकार घातियाँ कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए ये महान् आश्चर्य जनक ग्यारह अतिशय तीर्थंकरों को केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं ।

देवकृत 13 अतिमानवीय घटनायें (अतिशय)

माहप्पेण जिणाणं, संखेज्जेसुं च जोयणेसु वणं ।
पल्लव-कुसुम-फलद्धी-भरिदं जायदि अकालम्मि ॥ 916॥
कंटय-सक्कर-पहुदिं अवणित्ता वादि सुरकदो वाऊ ।
मोत्तूण पुव्व-वेरं, जीवा वट्टंति मेत्तीसु ॥ 917॥
दप्पण-तल सारिच्छा, रयणमई होदि तोत्तिया भूमी ।
गन्धोदकेई वरिसइ, मेघकुमारो पि सक्क-आणाए ॥ 918॥
फलभार-णमिद साली-जवादि सस्सं सुरा विकुव्वंति ।
सव्वाणं जीवाणं, उपज्जदि णिच्चमाणंदो ॥ 919॥
वायदि विक्किरियाए, वायुकुमारो हु सयिलो पवणो ।
कूव-तडायादीणि, णिम्मल-सलिलेण पुण्णाणि ॥ 920॥
धूमक्कपडण-पहुदीहि विरहिदं होदि णिम्मलं गयणं ।
रोगादीणं बाधा ण होंति सयलाण जीवाणं ॥ 921॥
जक्खिंद-मत्थएसुं, किरणुज्जल-दिव्व-धम्म-चक्काणि।
दट्ठूण संठियाइं, चत्तारि जणस्स अच्छरिया ॥ 922॥
छप्पण चउदिसासुं, कंचण-कमलाणि तित्थ-कत्ताणं ।
एक्कं च पायपीढे, अच्चण-दव्वाणि दिव्व-विहिदाणि॥ 923॥

सातिशय तीर्थङ्कर पुण्यकर्म से प्रभावित होकर देव लोग भी स्वभक्ति वशतः तीर्थंकर की सेवा के लिए एवं धर्म प्रभावना के लिए कुछ सातिशय महत्वपूर्ण रचनात्मक निम्न प्रकार कार्य करते हैं –

1. तीर्थङ्करों के महात्म्य से संख्यात योजन तक वन असमय में ही अऋतु में भी पत्र, फूल, फलों से सुसज्जित वनस्पत्तियाँ हो जाती हैं ।

2. कण्टक और बालू, धूलि को दूर करती हुई सुखदायक मन्द समीर चलने लगती है ।

3. जीव पूर्व वैर को छोड़कर निवास करते हैं ।

4. तीर्थंकर के समीपस्थ भूमि दर्पण तल के समान स्वच्छ एवं रत्नमयी हो जाती है ।

5. सौधर्म की आज्ञा से मेघ कुमार देव भक्ति से अवनत होकर सुगन्धित जल की वर्षा करते हैं ।

6. देव-विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शाली, जौ आदि शस्य को रचते हैं ।

7. तीर्थंकर भगवान के सातिशय पुण्य के प्रभाव से प्रभावित होकर सभी जीवों को नित्य आनन्द उत्पन्न होता है ।

8. वायु कुमार देव, देव विक्रिया से शीतल पवन चलाता है ।

9. कूप, तालाब आदि जलाशय निर्मल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं ।

10. आकाश धुआँ उल्कापातादि से रहित निर्मल हो जाता है ।

11. सम्पूर्ण जीवों को रागादिक की बाधाएं नहीं होती है । तीर्थंकर के सातिशय पुण्य के प्रभाव से देवों की ऋद्धि शक्ति से वहाँ का वातावरण सम्पूर्ण प्रदूषणों से रहित होकर शुद्ध होने के कारण तथा जीवों के आचार, विचार निर्मल होने के कारण रोगादिक न होना स्वाभाविक है ।

12. यक्षेन्द्रों के मस्तकों पर स्थित और किरणों से उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्म चक्रों को देखकर जनों को आश्चर्य होता है ।

13. तीर्थङ्कर के चारों दिशाओं में 56 सुवर्ण कमल, (सम्पूर्ण दिशा में 225 सुवर्ण कमल) एक पाद-पीठ एवं दिव्य विविध प्रकार के पूजन द्रव्य होते हैं ।

अतिमानवीय शोभन सजावट (प्रातिहार्य)

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य

जेसिं तरूण-मूले, उप्पण्णं जाण केवलं णाणं ।
उसह-प्पहुदि-जिणाणं, ते चिय असोय-रुक्खत्ति ॥924॥

ऋषभादि तीर्थङ्करों को जिन वृक्षों के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है वे ही अशोकवृक्ष हैं ।

अशोकवृक्ष रूप परिणत वृक्षों के नाम -

णग्गोह- सत्तपण्णं, सालं सरलं पियंगु तच्चेव ।
सिरिसं णागतरु वि य अक्खा धूलीपलास तेन्दूवं ॥

पाडल-जम्बू पिप्पल -दहिवण्णो णंदि-तिलय-चूदा य ।
कंकेलि-चंप-बउलं मेसयसिंग धवं सालं ॥
सोहंति असोय-तरु पल्लव-कुसुमाणदाहि साहाहिं ।
लंबंत-मुत्त-दामा, घंटा-जालादि-रमणिज्जा ॥ ति.प.गा. 924-927

1. न्यग्रोध 2. सप्तपर्ण 3. शाल 4. सरल 5. प्रियंगु 6. प्रयंगु 7. शिरीष 8. नागवृक्ष 9. अक्ष (बहेड़ा) 10. धूलिपलाश 11. तेन्दू 12. पाटल 13. जम्बू 14. पीपल 15. दधिपर्ण 16. नन्दी 17. तिलक 18. आम्र 19. कंकेलि (अशोक) 20. चम्पक 21. बकुल 22. मेषशृङ्ग 23. धव और 24. शाल ये तीर्थंकरों के अशोक वृक्ष हैं । लटकती हुई मोतियों की मालाओं की मालाओं और घण्टा समूहादिक से रमणीय तथा पल्लवों एवं पुष्पों से झुकी हुई शाखाओं वाले ये सब अशोक वृक्ष अत्यन्त शोभायमान होते हैं ।

अशोक वृक्ष प्रातिहार्य की ऊँचाई -

णिय-णिय-जिण उदएहिं बारस-गुणिदेण सरिस उच्छेहा ।
उसह-जिण-प्पहुदीणं असोय-रुक्खा विरायन्ति ॥928॥
किं वण्णणेण बहुणा दट्ठूणमसोय पादवे एदे ।
णिय-उज्जाण-वणेसुं ण रमदि चित्तं सुरेसस्स ॥929॥

वृषभादि तीर्थंकरों के उपर्युक्त चौबीस अशोक वृक्ष अपने-अपने जिनेन्द्र की ऊँचाई से बारह गुणे ऊँचे शोभायमान हैं । बहुत कहने से क्या ? इन अशोक वृक्षों को देख कर इन्द्र का भी चित्त अपने उद्यान वनों में नहीं रमता है ।

तीन छत्र प्रातिहार्य -

ससि मण्डल-संकासं मुत्ताजाल-प्पयास -संजुत्तं ।
छत्तत्तयं विरायदि सव्वाणं तित्थ कत्ताणं ॥930॥

चन्द्र-मण्डल सदृश और मुक्ता समुहों के प्रकाश से संयुक्त तीन छत्र सब तीर्थंकरों के (मस्तकों पर) शोभायमान होते हैं ।

सिंहासणं विसालं विसुद्ध-फलिहोवलेहि णिम्मविदं ।
वर-रयण-णियर-खचिदं को सक्कइ विण्णिदुं ताणं ॥93॥

निर्मल स्फटिक पाषाण से निर्मित और उत्कृष्ट रत्नों के समूह से खचित उन तीर्थंकरों का जो विशाल सिंहासन होता है उसका वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है ।

भक्ति युक्त गणों द्वारा वेष्टित प्रातिहार्य -

णिब्भर-भत्ति-पसत्ता अंजलि-हत्था पफुल्ल-मुह-कमला ।
चेट्ठन्ति गणा सव्वे एक्केक्कं वेढिउण जिणं ॥ 932॥

गाढ़ भक्ति में आसक्त हाथ जोड़े हुए एवं विकसित मुख कमल से संयुक्त सम्पूर्ण (द्वादश) गण प्रत्येक तीर्थंकर को घेर कर (बारह सभाओं) स्थित रहते हैं।

दुन्दुभिवाद्य प्रातिहार्य -

विसय कसायासत्ता हद-मोहा पविस जिणपहू सरणं ।
कहिदुं वा भव्वाणं गहिरं सुर-दुन्दुही सरइ ॥ 933 ॥

"विषय –कषायों में आसक्त (हे जीवों) मोह से रहित होकर जिनेन्द्र प्रभु की शरण में जाओं", भव्य जीवों को ऐसा कहने के लिये ही मानों देवों का दुन्दुभि बाजा गम्भीर शब्द करता है ।

पुष्प-वृष्टि प्रातिहार्य -

झण-झण-झणंत-छप्पय-छण्णा वरभत्ति भरिद-सुरमुक्का ।
णिवडेदि कुसुम-विट्ठी जिणिंद पय कमल-मूलेसुं ॥ 934॥

झण–झण शब्द करते हुए भ्रमरों से व्याप्त एवं उत्तम भक्ति से युक्त देवों द्वारा छोड़ी हुई पुष्प वृष्टि भगवान जिनेन्द्र के चरण–कमलों के मूल में गिरती हैं ।

प्रभा मण्डल प्रातिहार्य -

भव-सग-दंसण-हेदुं दरिसण-मेत्तेण सयल-लोयस्स ।
भामंडलं जिणाणं रवि-कोडि-समुज्जले जयइ ॥ 935॥

जो दर्शन मात्र से ही सब लोगों को अपने–अपने सात भव देखने में निमित्त हैं और करोड़ों सूर्यो के सदृश्य उज्ज्वल है तीर्थंकरों का ऐसा वह प्रभा मण्डल जयवन्त होता है ।

चमर प्रातिहार्य -

चउसट्ठि चामरेहिं मुणाल-कुन्देन्दु-संख-धवलेहिं ।
सुर-कर-पलव्विदेहिं विज्जिज्जन्ता जयंतु जिणा ॥936॥

देवों के हाथों से झुलाये (ढोरे) गये मृणाल कुन्दपुष्प चन्द्रमा एवं शङ्ख सदृश्य सफेद चौंसठ चामरों से वीज्यमान जिनेन्द्र भगवान जयवन्त होवे। तीर्थंकर के बार में विशेष अवगत करने के लिये मेरे द्वारा लिखित 'क्रान्ति के अग्रदूत' का अवलोकन करें ।

卐卐卐

अध्याय-4

चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति (1)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे ।
णर-पवर-लोए महिए विहुय -रय-मले महप्पण्णे ॥ 1॥
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से चौबीसं चेव केवलिणो ॥ 2॥
उसह-मजियं च वन्दे संभव-मभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥ 3॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपूज्यं च ।
विमल-मणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ॥ 4॥
कुंथुं च जिण वरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वंदाम्यरिट्ठ-णेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ॥ 5॥
एवं मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ 6॥
कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ 7॥
चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय पया संता ।
सायर-मिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ 8॥

हिन्दी अर्थ

जो कर्मरूप शत्रुओ को जीतने वालों में श्रेष्ठ हैं, केवलज्ञान से युक्त हैं, अनन्त संसार को जीतने वाले हैं, लोक श्रेष्ठ चक्रवर्ती आदि जिनकी पूजा करते हैं, जिन्होंने ज्ञानावरण, दर्शनावरण नामक रजरूपी मल को दूर कर दिया है तथा जो महान उत्कृष्ट ज्ञानवान् हैं ऐसे तीर्थंकरों की स्तुति करूँगा ॥ (1)

मैं लोक को प्रकाशित करने वाले तथा धर्मरूपी तीर्थ के कर्त्ता जिनों को नमस्कार करता हूँ और अरहंत पद को प्राप्त केवलज्ञानी चौबीस तीर्थंकरों का कीर्तन करूँगा ॥ (2)

मैं ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन और सुमति जिनेन्द्र की वन्दना करता हूँ । इसी प्रकार पद्मप्रभ, सुपार्श्व और चन्द्रप्रभ भगवान को नमस्कार करता हूँ॥(3)

मैं सुविधि अथवा पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म और शान्तिनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ ॥(4)

मैं कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और वर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ ॥(5)

इस प्रकार मेरे द्वारा जिनकी स्तुति की गई है, जिन्होने आवरणरूपी मल को नष्ट कर दिया है, जिनके जरा और मरण नष्ट हो गये हैं तथा जो जिनों में श्रेष्ट हैं, ऐसे चौबीस तीर्थंकर मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ (6)

जो मेरे द्वारा कीर्तित, वन्दित और पूजित हैं, लोक में उत्तम हैं, तथा कृतकृत्य हैं, ऐसे ये जिनेन्द्र –चौबीस भगवान मेरे लिये आरोग्य लाभ, ज्ञान लाभ, समाधि और बोधि प्रदान करे ॥ (7)

जो चन्द्रों से अधिक निर्मल हैं, सूर्यों से अधिक प्रभासमान हैं, समुद्र के समान गंभीर हैं तथा सिद्ध पद को प्राप्त हुए हैं ऐसे चौबीस जिनेन्द्र मेरे लिये सिद्धि प्रदान करे ॥(8)

चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति (2)

चउबीसं तित्थयरे उसहाइवीरपच्छिमे वंदे ।
सव्वे सगणगणहरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ॥ 1॥

अर्थ :– जिनमें ऋषभनाथ आदि में और महावीर अन्त में हैं ऐसे चौबीस तीर्थंकरों को गणों से सहित समस्त गणधरों को और समस्त सिद्धों को सिर से नमस्कार करता हूँ ।

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवान्तंगता,
ये सम्यग्भवजालहेतुमथनाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।
ये सद्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीत प्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान्वृषभादिवीर चरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम् ॥ 2॥

अर्थ :– संसार में जो एक हजार आठ लक्षणों के धारक थे, पदार्थ रूप समुद्र के अन्त को प्राप्त थे अर्थात् अनन्त पदार्थों के ज्ञाता थे, जो संसार रूपी जाल के

कारण –मिथ्यात्व आदि का अच्छी तरह नाश करने वाले थे, जो चन्द्र और सूर्य से अधिक तेजस्वी थे, जो साधु, इन्द्र, देव तथा अप्सराओं के सैकड़ों समूह से संगीतमय स्तवनों से पूजित थे, वृषभादि महावीरान्त उन तीर्थंकर देवों को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ ।

नाभेयं देवपूज्यं जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं,
सर्वज्ञं संभवाख्यं मुनिगणवृषभं नन्दनं देवदेवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वरकमलनिमं पद्मपुष्पाभिगन्धं,
क्षान्तं दान्तं सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चन्द्रनामानमीडे ॥ 3॥

अर्थ :– देवों के द्वारा पूज्य वृषभ जिनेन्द्र,समस्त लोक को प्रकाशित करने वाले अजितनाथ, सबको जानने वाले संभवनाथ, मुनिसमूह में श्रेष्ट देवों के देव अभिनन्दननाथ, कर्मरूप शत्रुओं के नाशक सुमतिनाथ, कमल पुष्प के समान गन्ध वाले तथा उत्कृष्ट विजयी सुपार्श्वनाथ और पूर्ण चन्द्र के समान कान्ति वाले चन्द्रप्रभ भगवान की स्तुति करता हूँ ।

विख्यातं पुष्पदन्तं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं,
श्रेयांसं शीलकोषं प्रवरनरगुरुं वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्वं विमलमृषिपतिं सिंहसेन्यं मुनीन्द्रं,
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शान्ति शरण्यम् ॥ 4॥

अर्थ :– अतिशय प्रसिद्ध पुष्पदन्त, संसार का भय नष्ट करने वाले शीतल नाथ, लोक के स्वामी श्रेयांसनाथ, शील के खजाने बालब्रह्मचारी गणधरादि श्रेष्ट पुरूषों के गुरू, अतिशय पूज्य वासुपूज्य, मुक्ति को प्राप्त, इन्द्रिय रूपी अश्वों का दमन करने वाले, ऋषियों के स्वामी विमलनाथ, राजा सिंहसेन के पुत्र मुनिराज अनन्तनाथ, समीचीन धर्म की पताका रूप धर्मनाथ और धर्म–शान्ति और धर्म–इन्द्रिय विजय के घर, शरणाभूता शान्तिनाथ की स्तुति करता हूँ ॥ 4॥

कुन्थुं सिद्धालयस्थं श्रमणमतिमरं व्यक्तभोगेषु चक्रं,
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिम् ॥
देवेन्द्राचार्यं नमीशं हरिकुलतिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तं,
पार्श्वं नागेन्द्रवन्द्यं शरणमहमितो वर्द्धमानं च भक्त्या ॥ 5॥

अर्थ :– सिद्धालय में स्थित तथा मुनियों के स्वामी कुन्थुनाथ, भोगरूप बाणों के समूह को छोड़ने वाले अरनाथ, प्रसिद्ध गोत्र–वंश अथवा नाम वाले मल्लिनाथ, विद्याधर समूह से स्तुत सुख की राशि स्वरूप मुनि सुव्रतनाथ, इन्द्रों के द्वारा पूज्य नमिनाथ, हरिवंश के तिलक तथा संसार का अन्त करने वाले नेमिनाथ, धरणेन्द्र के द्वारा वन्दनीय पार्श्वनाथ और भक्तिपूर्वक मैं वर्द्धमान भगवान् की शरण को प्राप्त हुआ हूँ । इन सब को नमस्कार करता हूँ ।

अंचलिका

इच्छामि भंते ! चउवीसतित्थयरभक्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पंचमहाकल्लाणंसपण्णाणं अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं चउतीसातिसयविसेससंजुत्ताणं बत्तीसदेविंदमणिमउऽमत्थयमहियाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोवगूढाणं थुइसयसहस्सणिलयाणं उसहाइ-वीरपच्छिम-मंगलमहापुरिसाणं णिच्चकालं, अच्चेमि, पूज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खहो, कम्मक्खहो, बोहिलाओ, सुगइमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ती होदु मज्झं ।

हे भगवन ! जो मैंने चौबीस तीर्थंकर –भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है, उसकी आलोचना करना चाहता हूँ । जो पाँच महाकल्याणकों से सम्पन्न हैं, आठ महाप्रातिहार्यों से सहित है, चौतीस अतिशय विशेषों से संयुक्त हैं, बत्तीस इन्द्रों के मणिमय मुकुटों से युक्त मस्तकों से जिनकी पूजा होती है, बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति और अनगार इन चार प्रकार के मुनियों से जो परिवृत हैं तथा लाखों स्तुतियों के जो घर हैं, ऐसे ऋषभादि महावीर पर्यन्त के मंगलमय महापुरुषों की मैं निरन्तर अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, उन्हें नमस्कार करता हूँ । उसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मुझे जिनेन्द्र भगवान के गुणों की सम्प्राप्ति हो ।

आ. रत्न श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव - चिंतन के क्षणों में